# अध्याय – 2
# जैविक खेती: परिभाषा, महत्त्व एवं भविष्य
# (Organic Farming – Definition, Importance and Future)

जैविक कृषि में सर्वप्रथम ''कृषि'' या फार्म को एक पूर्ण जीवित संगठन के रूप में देखा जाता है। इस संगठन के महत्वपूर्ण अंग हैं खेत, पशु, उद्यान, जड़ी–बूटी, मित्र–कीट और स्वयं मनुष्य। सभी अंग मिलकर ''कृषि'' का संतुलन बनाये रखते है। यदि इन सभी अंगों में से किसी एक को भी स्थान न दिया गया तो समन्वय बिगड़ना स्वाभाविक है। जिस प्रकार एक जीवित संगठन में विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्वों एवं यौगिकों के संयोजन से अंग तंत्र एवं कई अंग तंत्रों के संयोजन से शरीर की रचना होती है और किसी भी एक अवयव के असंतुलित होने से पूरा शरीर असंतुलित हो जाता है। उसी प्रकार से जैविक कृषि में संतुलन की अवस्था बनाये रखने के लिये इसके समस्त घटकों यथा मृदा, पशु, वातावरण, उद्यान आदि का समन्वय बनाये रखना अति आवश्यक है। इस प्रकार जैविक कृषि तीन मुख्य उद्देश्यों–पर्यावरणीय स्वास्थ्य, आर्थिक समृद्धि और सामाजिक तथा आर्थिक समता का संयोजन करती है।

## परिभाषा

अंतर्राष्ट्रीय जैविक कृषि गतिविधि संघ (आई.एफ.ओ.ए.एम.) के अनुसार ''जैविक कृषि एक उत्पादन प्रणाली है, जो कि मृदा, पारिस्थितिकी परितंत्रों और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखती है। यह प्रतिकूल प्रभावों वाले आदानों के उपयोग की बजाय, पारिस्थितिक प्रक्रियाओं, जैव विविधता और स्थनीय परिस्थितियों के अनुकूलित चक्र पर निर्भर करती है।'' जैविक कृषि, साझा पर्यावरण को लाभान्वित करने के लिए परंपरा, नवाचार और विज्ञान को जोड़ती है और इसमें शामिल सभी के लिए निष्पक्ष संबंधों और एक अच्छी गुणवत्ता वाले जीवन को बढ़ावा देती है।

खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार– जैविक खेती एक व्यापक एवं सम्पर्ण उत्पादन प्रबंधन पद्धति है जो जैव विविधता, जैविक चक्र एवं मृदा की जैविक क्रियाओं के माध्यम से शस्य–पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य में प्रोत्साहन एवं वृद्धि करती है। यह पद्धति क्षेत्रीय परिस्थितियों एवं स्थानीय अनुकूलित तंत्र के मध्यनजर बाहरी निवेश के आदानों के बजाए प्रक्षेत्र आधारित आदानों के उपयोग एवं प्रबंधन विधियों पर निर्भर करती है। इस पद्धति में उत्पादन कार्यों के निष्पादन हेतु संश्लेषित पदार्थों के उपयोग के बजाए जहाँ तक संभव हो शस्य क्रियाओं जैविक एवं यांत्रिक विधियों के प्रयोग से कार्य किए जाते हैं।

राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम (NPOF) के अनुसार – जैविक खेती फार्म की रचना एवं प्रबंधन कर एक पारिस्थितिकी तंत्र का निमार्ण करने की पद्धति है जिससे संश्लेषित बाह्य आदानों जैसे कि रासायनिक उर्वरकों एवं पेस्टीसाइड्स के उपयोग से बिना टिकाऊ उत्पादकता प्राप्त की जा सके।

### प्रमाणित जैविक कृषि

जैविक खेती को सुचारू रूप से पारदर्शी एवं उपभोक्ताओं से जोड़ने के लिए दुनिया भर में नियम कायदे बनाए हैं जिससे कि उपभोक्ताओं को प्रमाणिक रूप से जैविक उत्पाद मिल सके।

प्रमाणित जैविक कृषि में 'जैविक' शब्द एक 'लेबलिंग' मानक है जो यह दर्शाता है कि मान्यता प्राप्त संस्थाओं के द्वारा जैविक कृषि के स्वीकृत फसल उत्पादन अथवा प्रसंस्करण प्रणाली सम्बन्धित निर्धारित मानकों का उत्पादनकर्ता द्वारा पूरी तरह से पालन किया गया है। प्रमाणीकृत जैविक कृषि के तहत एकफार्म या भू–भाग के जैविक प्रमाणीकरण के लिए प्रार्थी या उत्पादक को जैविक मानकों का चरणबद्ध तरीके से अनुसरण करना होता है। ये मानक मुख्यतः निम्न बातों को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं–

- संश्लेषित रासायनिक कृषि आदानों जैसे उर्वरक, कीटनाशक तथा रोगनाशक पदार्थो के प्रयोग का कृषि उत्पादन में प्रतिबन्ध।
- ऐसे फार्मो या भूमि का उत्पादन में उपयोग जो पिछले कम से कम 2 या 3 वर्षो तक रसायनों से मुक्त रहा है।
- जैविक उत्पादों का अप्रमाणित उत्पादों से भौतिक रूप से पृथक्करण बनाये रखना।
- समय–समय पर ऐसे फर्मो/उत्पादन इकाईयों का प्रमाणीकरण संस्था द्वारा निरीक्षण व अंकेक्षण कार्य।

## अवधारणा

मूल रूप से "जैविक खेती" भारतीय पद्धति है। जैविक खेती भारतवर्ष की सनातन प्राचीनतम कृषि उत्पादन पद्धति रही है। ऋषि पाराशर ने बताया – ''जंतुनाम जीवनम् कृषि'' अर्थात् कृषि का आधार भूमि में रहने वाले सूक्ष्म जीवाणु हैं। जैविक खेती जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है जीवों के सहारे की जाने वाली जीवन्त खेती है। आधुनिक जैविक खेती का सिद्धान्त सर्वप्रथम सर अल्बर्ट हावर्ड ने 1930 के दशक में इंग्लैण्ड में प्रतिपादित किया। इसे तीस व चालीस के दशक में पौध उद्योग संस्थान (आई.पी.आई.) के सर अल्बर्ट हावर्ड के कार्यदल ने आधुनिक

आयाम दिया। उन्होंने जैविक कम्पोस्ट आधारित कृषि को अपनाने पर बल दिया।

'आर्गेनिक फार्मिंग' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लार्ड वाल्टर नार्थबोर्न ने 1940 में अपनी पुस्तक 'लुक टु दी लेण्ड' में किया था। मुख्यतया जैविक खेती की शुरूआत 1930 के दशक में यूरोप से हुई। 1924 में आस्ट्रिया के दार्शनिक डॉ. रूडोल्फ स्टेनर ने एक वैकल्पिक कृषि के रूप में 'बायोडाइनेमिक खेती' की विचारधारा का प्रतिपादन किया जो बाद में विश्व के कई देशों में व्यावसायिक रूप से अपनाई जाने लगी। लगभग इसी दौरान स्वीटजरलैण्ड और जर्मनी में डॉ. हंस मुलर ने ऐसी कृषि पद्धति का प्रतिपादन किया जिसमें फार्म को संसाधनों एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने वाली कृषि पद्धति पर जोर दिया गया।

लेडी एव वेलफोर ने 30 साल तक अनुसंधान कर यह बताया कि खाद्य पदार्थ उत्पादन की विधियों या पद्धतियों का, खाद्य गुणवत्ता तथा मानव एवं मृदा स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी विचारधारा पर अमेरिका में रोडेल फेमिली द्वारा विस्तृत कार्य किया गया तथा उन्होंने 1947 में मृदा एवं स्वास्थ्य फाउन्डेशन नामक संगठन की स्थापना की। सन् 1963 में आर. कार्सन द्वारा लिखित "साइलेण्ट स्प्रिंग" नामक पुस्तक प्रकाशित होने के पश्चात् पौध एवं जीवनाशी रसायनों के दुष्परिणामों के मामले उजागर हुए तथा इससे प्रभावित होकर जैविक कृषि में रसायनों के प्रयोग पर विशेष नियम समावेशित किए गए।

1980 व 1990 के दशकों में प्रकृति, जैव विविधता संरक्षण, पशु कल्याण, सामाजिक न्याय इत्यादि पहलुओं को कृषि पद्धतियों की कार्यप्रणाली व व्यवसाय दक्षता से जोड़ा जाने लगा जिसका महत्व चहुँमुखी ग्रामीण विकास के सम्बन्ध विशेष रूप से देखा जाने लगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रचलित कृषि पद्धतियों में नए–नए पहलू जुड़ते गये और उनके समाधान स्वरूप स्थान, समय एवं विचारधारा के आधार पर विभिन्न वैकल्पिक कृषि पद्धतियों का विकास होने लगा। इन वैकल्पिक कृषि पद्धतियों को जैविक कृषि, पारिस्थितिकीय कृषि, बायोडायनेमिक, प्राकृतिक, टिकाऊ, ऋषि कृषि, यौगिक खेती, जीरो बजट नेचुरल फार्मिंग, वेगानिक्स, अग्निहोत्र कृषि, परमाकल्चर इत्यादि नामों से पुकारा जाने लगा। लेकिन 1972 में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय जैविक कृषि आन्दोलन फेडरेशन द्वारा जैविक कृषि के सिद्धान्तों, नियमों एवं कार्य प्रणाली को क्रमबद्ध कर दिया गया है जो लगभग सभी देशों के साथ–साथ विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन, रोम तथा विश्व व्यापार संगठन द्वारा मान्यता प्राप्त है।

मूलरूप से कई चिन्तक एवं वैज्ञानिक इसे हरित क्रान्ति के दुष्प्रभावों के फलस्वरूप विकसित वैकल्पिक कृषि पद्धति के रूप में देखते है तो अन्य मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण तथा जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से निपटने के लिए आवश्यक अच्छी कृषि क्रियाओं की ''बास्केट ऑफ टेक्नोलाजी'' के रूप में मानते हैं। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ''प्रकृति की और लौटो'' के मुददे पर गहन चिन्तन हो रहा है। खाद्य एवं कृषि संगठन, रोम ने वर्श 2014 को ''मृदा स्वास्थ्य वर्ष'' घोषित किया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ''परिवार कृषि'' पर जोर दे रहा है, राष्ट्रीय स्तर पर ''मृदा स्वास्थ्य कार्ड'' का बड़ा अभियान चलाया जा रहा है। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर ''राष्ट्रीय परम्परागत कृषि मिशन'' की शुरूआत वर्ष 2015–16 में की गई।

योजना आयोग की सिफारिश के अनुसार भारत के कुल कृषित क्षेत्रफल का 10–15 प्रतिशत क्षेत्रफल जैविक कृषि में लाया जा सकता है। विश्व के अन्य देशों के समान ही भारत में जैविक खेती को बढ़ावा देने की परिस्थितियाँ विद्यमान हैं।

## जैविक खेती के सिद्धान्त

अंतराष्ट्रीय जैविक कृषि गतिविधि संघ (इंटरनेशनल फैडरेशन ऑफ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स) के अनुसार जैविक खेती के चार सिद्धांत हैं:

- स्वास्थ्य का सिद्धांतः मृदा, पादप (फसल), पशु और मानव स्वास्थ्य को लगातार बनाए रखना एवं साथ ही उसमें वृद्धि करना। यदि मृदा का स्वास्थ्य अच्छा होगा तभी उसमें उगने वाली फसलों का स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। इसी प्रकार यदि पशु अथवा मानव इन स्वस्थ पादपों (फसलों) का सेवन करेंगे तो उनका स्वास्थ्य भी अच्छा होगा।
- पारिस्थितिकी का सिद्धांतः जैविक खेती पारिस्थितिकी एवं सजीव पद्धतियों ओर चक्रों पर आधारित होनी चाहिए। जैविक खेती इन पारिस्थितिक चक्रों के साथ कार्य करें और साथ ही इनकी निरन्तरता बनाए रखने में भी सहायक होनी चाहिए।
- निष्पक्षता अथवा न्याय संगतता का सिद्धांतः जैविक खेती पर्यावरण में उपस्थित सभी जीवों के पारस्परिक संबंधों को सुदृढ़ करने पर विशेष बल देती है, जिससे कि किसी भी जीव के साथ अन्याय न हो और साथ ही उसका अत्यधिक दोहन भी न हो।
- सेवा का सिद्धांतः जैविक खेती को एक जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए, जिससे कि वर्तमान जनसंख्या और आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य हितों की अवहेलना न हो और साथ ही पर्यावरण स्वास्थ्य पर भी कोई बुरा प्रभाव न पड़े।

### जैविक खेती के उद्देश्य

1. जीवन धारण करने योग्य कृषि प्रणाली विकसित करना जिससे भविष्य में आवश्यक मात्रा में पोषक खाद्य उत्पादन हो सके।
2. आत्मनिर्भर कृषि प्रणाली विकसित करना जो वास्तव में हमारे अपने संसाधनों में उपलब्ध सस्ते संसाधनों पर आधारित हों।

3. रासायनिक खेती के विकल्प के रूप में टिकाऊ खेती का विकास तथा जल स्रोतों एवं मिट्टी को प्रदूषण मुक्त रख स्वस्थ पर्यावरण का निर्माण करना।
4. उत्पादन लागत में कमी लाकर टिकाऊ खेती के तरीकों के विकास द्वारा खेती एवं कृषक को स्वावलम्बी बनाना।

### जैविक खेती का महत्त्व

जैविक कृषि न केवल भूमि के स्वास्थ्य, बल्कि मानव–मात्र के स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उपयोगी पद्वति है। इसकी बहुपक्षीय उपयोगिताओं को निम्नानुसार देखा जा सकता है–

### भूमि की उर्वराशक्ति में टिकाऊपन

जैविक पद्वति में प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न खादें तथा तकनीकें न केवल भूमि को पोषक तत्व उपलब्ध करवाती हैं अपितु भूमि की संरचना तथा जलधारण क्षमता में भी वृद्धि करती हैं। इससे भूमि के स्वास्थ्य तथा गुणवत्ता में सुधार होता है।

### पशुधन में बढ़ोतरी

पशुधन का महत्व बढ़ते मशीनीकरण एवं बदलती जीवनशैली से कम होता जा रहा है। बिना पशुधन के कृषि में टिकाऊपन बनाए रखना संभव नहीं है और न ही लाभकारी है। जैव विविधता की दृष्टि से भी यह एक अच्छा संकेत नहीं माना जा सकता। इसके विपरित जैविक पद्वति में पशुधन को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह माना गया है कि एक एकड़ क्षेत्र में जैविक खेती के लिए एक या इससे अधिक पशुधन उपलब्ध हो तो बेहतर है।

### बाह्य आदानों की लागत में कमी

जैविक पद्धति में किसान अधिकतर इनपुट जैसे–खादें तथा कीटनाशक अपने स्थानीय स्रोतों से ही बना लेता है जिसमें विभिन्न कृषि आदानों पर होने वाली लागत में कमी आती है। यद्यपि श्रम लागत में बढ़ोतरी होती है।

### वातावरण की शुद्वता

परम्परागत पद्धति में प्रयुक्त किए जाने वाले हानिकारक रसायन न केवल पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं बल्कि ये कृषि हेतु लाभदायक जीवों को भी नष्ट कर देते हैं। जैविक पद्धति में इनका संतुलन बना रहता है तथा इनकी संख्या में भी बढ़ोतरी होती है।

### मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी

परम्परागत कृषि पद्धति में खेती हेतु प्रयुक्त किए जा रहे रसायनों के कारण वायु तथा भूमि प्रदूषण खतरनाक स्तर तक पहुँच गए है। यही नहीं इनके प्रयोग से उत्पादित होने वाले अनाज, सब्जियों तथा फलों में भी विभिन्न रसायनों के अवशेष प्राप्त हो रहे हैं। जो मानव स्वास्थ्य के लिये ''धीमा जहर'' साबित हो रहे हैं। जैविक पद्धति अपनाकर इस बिना रसायन युक्त खाद्य प्राप्त कर सकते हैं तथा इनके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली बीमारियों से भी रक्षा होगी।

### कम पानी की आवश्यकता

जीवांश खादों के प्रयोग से भूमि को सिंचाई की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता पड़ती है क्योंकि ये खादें भूमि की जल धारण क्षमता को बढ़ाती हैं। इस प्रकार सिंचाई की अपेक्षाकृत कम व्यवस्था होने पर भी किसान अच्छी फसल ले सकते है।

### कृषि उत्पाद की गुणवत्ता

अधिकांशतः लोग यह जानते है कि वर्तमान में किसान दो प्रकार की पैदावार लेते हैंः– टिकाऊ तथा बिकाऊ। इनमें से टिकाऊ प्रकार की फसल का उपयोग वे स्वयं के लिये करते हैं जबकि बिकाऊ प्रकार की फसल वे बाजार के उद्देश्य से तैयार करते हैं।

### मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति

जैविक खादों के उपयोग से फसल को सभी 17 आवश्यक तत्वों की पूर्ति एक साथ हो जाती है। जहाँ अधिकांश रासायनिक उर्वरक केवल नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश पर ही केन्द्रित रहते हैं।

### जैविक उत्पाद का लाभकारी मूल्य

वर्तमान में अधिकांशः उपभोक्ता रासायनिक विधियों द्वारा पोषित एवं सुरक्षित खाद्यानों तथा उत्पादों के सेवन से होने वाली हानियों के प्रति सचेत हो गए हैं, फलतः ''आर्गेनिक उत्पादों'' के नाम से अलग से दुकानें/बाजारें लगने लगी हैं जिनके लिए जागरूक उपभोक्ता 10 से 30 प्रतिशत तक अधिक मूल्य देने के लिये तैयार रहते हैं। इस प्रकार बाजार को ध्यान रखते हुए फसल का चुनाव कर जैविक पद्धति से खेती करने के अवसर का लाभ लिया जा सकता है।

**भारत में जैविक खेती की उपयोगिताः–** भारत में जैविक कृषि के प्रोत्साहन के लिए भारत सरकार तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का विशेष जोर है जिसके प्रमुख कारणों को नीचे रेखांकित किया गया है।

1. हरित क्रांति की सूत्रधार फसलों गेहूँ– धान के उच्च उत्पादन स्तर के लिए अपनाई गई रसायनिक एवं सघन पद्धति के दुष्प्रभाव अब खुलकर सामने आ रहे हैं। यह उत्पादन स्तर भूमिगत जल संसाधनों के अत्यधिक इस्तेमाल व भूमि के बहुत ज्यादा दोहन की कीमत पर प्राप्त किया गया। इसके परिणामस्वरूप भूमिगत जलस्तर तेजी से गिरता जा रहा है और भूमि की उर्वरा शक्ति कम होती जा रही है। इन फसलों में खरपतवार, कीट और बीमारियों में वृद्धि के साथ–साथ इनमें रसायन रोधी क्षमता विकसित हो रही हैं। इन सबके कारण किसान को उत्पादन स्तर बनाए रखने के लिए पहले से कहीं ज्यादा व्यय करना पड़ता है जो सीधे तौर पर फसल के लागत मूल्य को बढ़ाने के साथ–साथ मुनाफा कम करता जा रहा है।

2. गेहूँ– धान के लगातार उत्पादन से भूमि और पौधों में कुछ विशेष तत्वों जैसे सल्फर, लोहा, ताँबा, फॉस्फोरस, मैंगनीज

आदि की कमी होने लगी है जिसके फलस्वरूप पशुओं में उत्पादन और प्रजनन क्षमता प्रभावित हो रही है। इसका प्रभाव पशुपालकों को आर्थिक नुकसान के रूप में सहन करना पड़ रहा है।

1. "दीर्घावधि उर्वरक प्रयोग" पर अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि बिना खादों व कार्बनिक पदार्थों के उपयोग व केवल उर्वरकों के बलबूते पर फसल की अधिकतम उपज को लगातार बनाए रखना असंभव है।
2. हमारे देश की बढ़ती खाद्यान्न आवश्यकता व कुल पोषक तत्वों की उत्पादन क्षमता का आकलन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि हमारे देश की पोषक तत्वों की माँग व खपत में लगभग 8 से 10 मिलियन टन का अंतर है। अगर वर्तमान स्तर का खाद्यान्न उत्पादन बनाए रखना है तो पोषक तत्वों के वैकल्पिक स्रोतों पर विचार करना होगा तथा किसानों को इनके प्रयोगों के बारे में जानकारी देनी होगी।
3. बढ़ते हुए प्रतिस्पर्धा के युग में कृषि उपज को लागत प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए कम कीमत वाले संसाधनों का उपयोग कर टिकाऊ उत्पादन करना।
4. राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निरन्तर माँग, बाजार के स्वरूप में परिवर्तन के कारण किसानों की बाजार में पहुँच, गुणात्मक उपज का उचित मूल्य एवं मूल्य नीतियों तथा निजी कम्पनियों के व्यापार तरीकों व माध्यमों की उचित जानकारी पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता बढ़ती जा रही है।
5. विश्व व्यापार सघं के नियमों का भारत में धीरे–धीरे क्रियात्मक रूप लेने से कृषि उपज के गुणात्मक स्वरूप पर उपभोक्ता, निजी कम्पनियों व व्यापारिक वर्ग का ध्यान आकर्षित होने से कृषि विधियों, खाद, बीज, सिंचाई इत्यादि घटकों के प्रयोग में एक विशेष सावधानी रखने का संकेत चारों तरफ फैल रहा है।
6. कृषि निर्यात की संभावनाओं तथा डब्ल्यू.टी.ओ. व्यापार नीति के चलते हमें गेहूँ, धान, आर्गेनिक मसाले इत्यादि के निर्यात के लिए इन फसलों की अच्छी माँग वाली किस्मों के अलावा इनकी गुणवत्ता भी अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप रखनी होगी। हमारे यहाँ उगाए जाने वाले कृषि उत्पाद जैसे फल, सब्जी, जीरा आदि गुणवत्ता, सफाई व फाइटा सेनेटेरी उपायों के अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नहीं होते।

## भारत में जैविक खेती का भविष्य

भारत में सन् 1993 में कृषि मंत्रालय द्वारा गठित तकनीकी समिति ने पहली बार सैद्वान्तिक रूप से यह अनुमोदित किया कि भारत में रासायनिक पदार्थों के खेती में अधिक उपयोग को हतोत्साहित करना चाहिए तथा क्रमबद्ध तरीके से इनका उपयोग कम किया जाना चाहिए तथा जैविक कृषि के सिद्वान्तों को लागू करना चाहिए। अप्रैल, 2000 में वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय, भात सरकार द्वारा राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम की शुरूआत की गई। सरकार द्वारा 1 जुलाई, 2001 से ऑर्गेनिक प्रोडक्ट प्रमाणीकरण के लिए चार संस्थाओं, स्पाइस बोर्ड, टी बोर्ड, कॉफी बोर्ड एवं एपीडा को अधिकृत एजेन्सी बनाया गया। दसवीं पंचवर्षीय योजना के तहत भारत सरकार ने जैविक खेती को राष्ट्रीय प्राथमिकता क्षेत्र घोषित किया। वर्ष 2004 में राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र, गाजियाबाद (उत्तरप्रदेश) में स्थापित किया गया। 18 जनवरी, 2016 को सिक्किम को देश का प्रथम जैविक राज्य घोषित किया गया। राष्ट्रीय टिकाऊ कृषि मिशन (NMSA), परम्परागत कृषि विकास योजना (PKVY), राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY), एकीकृतबागवानी विकास मिशन (MIDH), राष्ट्रीय तिलहन बीज एवं ऑयल पाम मिशन (NMOOP) तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के जैविक खेती नेटवर्क परियोजना के माध्यम से जैविक खेती को विभिन्न अनुसंधान एवं विस्तार कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

वर्तमान में जैविक खेती विश्व के लगभग 179 देशों में 509 लाख हैक्टर भूमि पर 24 लाख कृषकों द्वारा की जा रही है (FiBL & IFOAM Year Book 2017)। जैविक खेती का विस्तार हो रहा है। वर्ष 2015–16 में भारत में जैविक खेती के अंतर्गत कुल 57.1 लाख हेक्टेयर प्रमाणित क्षेत्र था। जिसमें से 42.2 लाख हेक्टेयर वन्य / जंगली और 14.9 लाख हेक्टेयर कर्षित क्षेत्र था। वर्ष 2015–16 में 13.5 लाख टन जैविक उत्पादों का उत्पादन किया गया। मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखंड, केरल, कर्नाटक, असम, सिक्किम और अन्य उत्तर–पूर्वी राज्य जैविक खेती को अपनाने वाले प्रमुख राज्य हैं। इसमें सोयाबीन, कपास, गन्ना, तिलहन, दलहन, बासमती धान, मसाले, चाय, फल, सूखे फल, सब्जियाँ, कॉफी और उनसे प्राप्त मूल्य संवर्धित उत्पाद शामिल हैं।

भारत में निम्न कारणों से जैविक खेती की प्रचुर संभावनाएँ हैं–

1. **संसाधनों की उपलब्धता** – देश की विविध जलवायु, अपार प्राकृतिक सम्पदा, समृद्ध पशुधन, उपभोक्ता बाजार, रासायनिक उर्वरकों के प्रति इकाई क्षेत्र में कम खपत, इत्यादि के कारण देश में जैविक खेती की प्रचुर संभावनाएँ हैं। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में श्रम की उपलब्धता सस्ती व आसान होने से भारतीय जैविक उत्पाद विश्व स्तर पर अधिक प्रतिस्पर्धी सिद्ध हो सकते हैं।
2. **प्रति इकाई क्षेत्र में पेस्टीसाइड एवं उर्वरकों की कम मात्रा का उपयोग** – भारत में अधिकतर छोटे और मध्यम श्रेणी के कृषकों के खेतों पर प्रति इकाई क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों उवं अकार्बनिक पदार्थों की खपत

अन्य देशों की तुलना में कम है। भारत का वर्ष 2014 में औसत उर्वरक एवं पेस्टीसाइड की खपत क्रमाशः 128 किग्रा./हे. तथा 310 ग्राम प्रतिहेक्टेयर था। इसी प्रकार नत्रजन, फॉस्फोरस एवं सूक्ष्म तत्वों पोटाश की पोषक तत्व उपयोग दक्षता 33, 15 एवं 20 प्रतिशत थी जो कि कम है। साथ ही देश के पहाड़ी व उत्तर–पूर्वी राज्यों में जहाँ उर्वरक उपयोग 25 से 50 किग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष है, ऐसे क्षेत्र में कृषकों के खेतों पर जैविक खेती से अधिक फायदा लिया जा सकता है। भारत में आज भी कई गाँवों में कृषक परम्परागत पद्धति से खेती कर रहे हैं जिसमें फसलों के साथ पशुपालन, वानिकी व चरागाह प्रबंधन में सामंजस्य से जीवन यापन कर रहे हैं। ऐसे किसान जैविक खेती के घटकों को अपनाकर बिना रसायनों के खेती कर लाभ ले सकते हैं।

3. **कार्बनिक अवशिष्टों की उपलब्धता** – भारत में काफी मात्रा में प्रतिवर्ष कार्बनिक अवशिष्टों का उत्पादन होता है। देश में प्रतिवर्ष उपलब्ध 280 मिलियन टन गोबर, 273 मिलियन टन फसल अवशेष, 6351 मिलियन टन कूड़ा–करकट तथा 22 मिलियन हेक्टेयर में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों का उचित उपयोग कर जैविक माध्यम से फसलों की पोषक तत्वों की माँग पूरी की जा सकती है।
4. **निर्यात की संभावना** – भारत में विविध जलवायु के कारण गुणवत्तायुक्त फसलें जैसे मसाले, औषधीय एवं संगधीय फसलें, बासमती व अन्य चावल, फल, सब्जियाँ, कपास, चाय, कॉफी, ड्यूरम (काठिया) गेहूँ आदि की जैविक खेती की जाकर तथा उनका निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। इस प्रकार जैविक खेती से प्राकृतिक संसाधन सुरक्षित रख कर देश को स्वावलम्बी बना सकते हैं।
5. **प्रमाणीकरण संस्थाओं की उपलब्धता** – जैविक खेती की मुख्य समस्या है जैविक उत्पादों का प्रमाणीकरण। जैविक उत्पादों का विदेशी प्रमाणीकरण संस्थाओं द्वारा प्रमाणीकरण की प्रक्रिया काफी महंगी पड़ती है। परन्तु आज देश में 26 से ज्यादा संस्थाओं को सरकार ने अधिकृत कर जैविक प्रमाणीकरण के कार्य को सुविधाजनक कर दिया है। साथ ही सहभागिता गारण्टी पद्धति से आम किसान भी बहुत कम लागत में जैविक प्रमाणीकरण करवा सकता है।

## 2.2 जीवांश खाद एवं उनकी उपयोगिता

जल, वायु तथा प्रकाश के अतिरिक्त जीवों के लिए प्रकृति की सबसे महान देन भूमि है। यदि भूमि की उर्वरता एवं उत्पादकता कम रहेगी तो उत्पादन कम हो सकता है। इसलिए हमको धरती–माता की भूख मिटाने के लिए कोई कसर नहीं रखनी चाहिए। धरती माता के सपूत, जो धरती की हर प्रकार की भूख–प्यास की चिन्ता करते हैं, धरती–माता के धन के सच्चे अधिकारी हैं।'' – महात्मा गाँधी

एक लोकोक्ति है ''खाद पड़ें तो खेत, नहीं तो मिट्टी रेत'' अर्थात् खेत खाद से ही बनता है नहीं तो केवल मिट्टी रेत ही है। अतः खाद से ही खेत की उत्पादन क्षमता बढ़ती है।

खाद– पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए वे सभी कार्बनिक पदार्थ जो भूमि में मिलाये जाने पर, भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं, खाद कहलाते हैं।

खाद का अभिप्राय प्राकृतिक पदार्थों से है। इनमें पशु–पक्षियों का मल–मूत्र, पेड़–पौधे, घास–चारा आदि के अवशेष सम्मिलित होते हैं। स्थूल कार्बनिक खादों में गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद आदि व सान्द्रित कार्बनिक खादों में खलियाँ, हड्डी की खाद आदि आते हैं।

खाद शब्द की उत्पत्ति संभवतया संस्कृत के शब्द 'खाद्य' से हुई, जिसका अर्थ भोजन से है। भोजन संतुलित एवं पूर्ण हो, तभी पेड़–पौधे अपनी वृद्धि एवं विकास पूर्णरूपेण कर सकते हैं। ऐसा संतुलित एवं पूर्ण भोजन पौधों को केवल जीवांश खाद से ही प्राप्त हो सकता है।

जीवांश शब्द का सन्धि विच्छेद है– जीव + अंश। अतः जीवांश खाद उस खाद को कहते हैं, जिसमें जीव का अंश हो, ऐसी खाद को प्राकृतिक या जैविक या कार्बनिक खाद भी कहते हैं। जीवांश खाद में मुख्यतः गोबर की खाद, हरी खाद, कम्पोस्ट, खली की खाद, हड्डी की खाद, पोल्ट्री खाद, मछली की खाद, रक्त की खाद, मानव विष्टा की खाद आदि आती है। जैविक उर्वरक जैसे राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, नील हरित शैवाल आदि भी जीवांश खाद ही हैं।

### जीवांश खादों की उपयोगिता

सघन खेती में समन्वित पौध पोषण प्रणाली का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में ही नहीं अपितु विश्व में कृषि उत्पादन में 50 प्रतिशत वृद्धि रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से ही हुई। वर्तमान समय में उच्च विश्लेषण उर्वरकों जैसे यूरिया, डाइअमोनियम फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश के अधिक प्रचलन के कारण मृदा में गौण व सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी आ रही है। भारत में 47 प्रतिशत मृदाओं में जस्ता, 11.5 प्रतिशत में लोहा, 4.8 प्रतिशत में ताँबा तथा 4 प्रतिशत मृदाओं में मैंगनीज की कमी है जिनका प्रभाव फसलों पर पड़ रहा है। दलहन, तिलहन तथा अधिक उपज देने वाली फसलों में गन्धक प्रयोग आवश्यक हो गया है। भारतीय मृदाओं में जैविक कार्बन की सर्वत्र कमी है। जीवांश खादें जैसे गोबर की खाद, हरी खाद, जैव उर्वरक, कम्पोस्ट आदि मृदा उर्वरता बनाये रखने, उत्पादन को स्थिर रखने एवं पोषक तत्वों का सही परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। जीवांश खादों का प्रभाव न केवल एक फसल तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि उनका प्रभाव 2–3 वर्षों तक रहता है जीवांश खादों के उपयोग से मृदा में जैविक कार्बन स्तर में भी सुधार आता है।

पौधों को अपना जीवन पूर्ण करने के लिए 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जोकि केवल उर्वरकों के प्रयोग से पूर्ण नहीं की जा सकती है। आवश्यक मात्रा में जीवांश खादों के प्रयोग से प्रमुख तत्वों के साथ–साथ गौण व सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति भी आसानी से हो जाती है। जैविक खेती में फसल को पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए संश्लेषित उर्वरकों का प्रयोग वर्जित है अतः जैविक खेती पूर्णतया कार्बनिक या जीवांश खादों पर ही निर्भर है। इसलिए जैविक खेती में जीवांश खादों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

जीवांश खाद के उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक तीनों ही अवस्थाओं में सुधार होता है। इसकी उपयोगिता निम्न बिंदुओं से स्पष्ट है–

**(i) मृदा की भौतिक अवस्था पर प्रभाव**

1. भूमि की संरचना में सुधार होता है। रेतीली हल्की मिट्टी सघन तथा दानेदार संरचना की हो जाती है। भारी भूमि हल्की तथा भुरभुरी हो जाती है।
2. मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्वि होती है।
3. मृदा में वायु संचार में वृद्धि होती है।
4. पानी व वायु द्वारा मृदा अपरदन कम हो जाता है, जिससे मृदा संरक्षण होता है।
5. मृदा ताप नियंत्रण में रहता है।
6. पौधों की जड़ों का विकास अच्छा होता है।
7. भूमि में जल निकास अच्छा हो जाता है।

**(ii) मृदा की रासायनिक अवस्था पर प्रभाव**

1. पौधों को सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति के साथ–साथ हारमोन्स व एन्टीबायोटिक्स की भी प्राप्ति होती है जो विशेष लाभकारी होते हैं।
2. क्षारीय मृदा का पी.एच. मान कम हो जाता है।
3. मृदा की क्षारीयता तथा लवणीयता में सुधार होता है।
4. मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है।
5. मृदा में पाये जाने वाले विषैले पदार्थों का प्रभाव कम हो जाता है।
6. जीवांश खाद के उपयोग व अपघटन से मृदा में स्थिर तत्व विलेयशील होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं।
7. मृदा की उभय प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है।
8. मृदा की धनायन विनिमय क्षमता में वृद्धि होती है।

**(iii) मृदा की जैविक अवस्था पर प्रभाव**

1. मृदा में लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है।
2. जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होने के कारण पौधों को पोषक तत्व प्राप्त होते रहते हैं।
3. जीवांश खादें सूक्ष्म जीवों के लिए भोजन व उर्जा प्रदान करती हैं जिससे सूक्ष्म जीवों द्वारा मृदा में होने वाली क्रियाएँ जैसे– नाइट्रीकरण, अमोनीकरण (ऑक्सीकरण) तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में बढ़ोतरी हो जाती है।
4. मृदा में वायु से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण तीव्र गति से होने लगता है।
5. जीवाणु जटिल पदार्थों को विच्छेदित कर आयनिक रूप में पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

अतः जीवांश खाद के उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक अवस्थाओं में सुधार होने पर मृदा से फसलों का टिकाऊ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। कार्बनिक खादों के साथ–साथ रासायनिक उर्वरकों के संतुलित उपयोग से न केवल अधिकतम उपज ली जा सकती है, बल्कि दीर्घ अवधि तक इनके प्रयोग से भूमि के उर्वरता स्तर में भी सुधार किया जा सकता है।

जीवांश खाद का वर्गीकरण – जीवांश खादों को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है–

- स्थूल कार्बनिक खादें – ऐसी जीवांश खादों में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा अधिक एवं पोषक तत्वों की मात्रा कम होती है। जैसे – गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद, मानव विष्ठा, चिड़ियों की बीट, अपवक, गंदे नालों की खाद, मैले की खाद आदि।
- सान्द्र कार्बनिक खादें – ऐसी जीवांश खादों में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा कम एवं पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होती है। जैसे – खलियाँ, हड्डी का चूरा, सूखा रक्त, मछली की खाद आदि।

## 2.3 जीवांश खादें बनाने की विधि एवं प्रयोग

### 2.3.1. गोबर की खाद

गोबर की खाद का प्रयोग हमारे देश में प्राचीन काल से हो रहा है। गोबर की खाद से तात्पर्य ऐसी खाद से है जिसमें घरेलु पशुओं (गाय, भैंस, बैल, भेड़, बकरी, ऊँट आदि) के ठोस तथा द्रव मल–मूत्र से सनी बिछावन (पुआल, भूसा, चारा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ, रेत आदि) को गड्ढों में सड़ाकर तैयार किया जाता है।

**गोबर की खाद के मुख्य घटक** – गोबर की खाद के तीन मुख्य घटक (अवयव) गोबर, मूत्र और बिछावन हैं।

1. **गोबर** – पशुओं के मल (गोबर) के ठोस पदार्थ में कई अघुलनशील व बिना पचे पदार्थ होते है। इसके अतिरिक्त 0.3–0.7 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.25 प्रतिशत फॉस्फोरस व 0.3–0.5 प्रतिशत पोटेशियम तथा कुछ गौण व सूक्ष्म पोषक तत्व आदि होते है।
2. **मूत्र** – मूत्र का मुख्य अवयव यूरिया है, यह 2 प्रतिशत होता है। इसके अतिरिक्त मूत्र में अनेक रासायनिक पदार्थ घुलनशील अवस्था में होते हैं। मूत्र में नाइट्रोजन 0.4–1.35 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.05–0.10 प्रतिशत व पोटेशियम 0.5–2.0 प्रतिशत होता है।

3. **बिछावन** – पशुओं के मूत्र को शोषित करने के लिये बिछावन का प्रयोग करते है। बिछावन में पौधे के लिये आवश्यक पोषक तत्व भी उपलब्ध अवस्था में पाये जाते हैं। बिछावन से खाद के ढ़ेर में वायु का संचार अच्छा होता है, जिससे जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है तथा खाद सड़ने में मदद मिलती है।

**गोबर की खाद में पोषक तत्व** – गोबर की खाद में सभी पोषक तत्व जैसे– नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, गंधक, लोहा, ताँबा, जस्ता, मैंगनीज आदि पाये जाते हैं।

**गोबर की खाद में मुख्य तत्वों की मात्रा** –
नाइट्रोजन 0.5 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.25 प्रतिशत एवं पोटेशियम 0.5 प्रतिशत।

गोबर की खाद में उपस्थित तत्वों की मात्रा, पशुओं की किस्म, पशुओं की आयु, उनके भोजन, कार्य, बिछावन व खाद संग्रह करने की विधि पर निर्भर करती है।

**गोबर की खाद तैयार करने की विधि** –

1. **वर्तमान प्रचलित विधि** – हमारे देश में गोबर की खाद तैयार करने की वर्तमान प्रचलित विधि दोषपूर्ण है। इससे प्राप्त खाद में पोषक तत्वों की मात्रा कम होती है व खाद की गुणवत्ता निम्न स्तर की होती है। मिट्टी द्वारा सोखा गया मूत्र तथा बचा हुआ चारा ढेर के रूप में खुले गड्ढों में इकट्ठा कर लेते हैं। अधिकांश गोबर को ईंधन के रूप में काम में लिया जाता है।
2. **संशोधित गड्ढा विधि** –इस विधि से खाद बनाने के लिये एक पशु के लिए 1.10 मीटर गहरा, 2.0 मीटर चौड़ा व 3. 0 मीटर लम्बा गड्ढा एक वर्ष के लिए पर्याप्त रहता है। पशुओं की संख्या अधिक होने पर गड्ढों की गहराई, लम्बाई व चौड़ाई बढ़ाने की अपेक्षा उनकी संख्या बढ़ाना उचित रहता है। रेतीली भूमि में गड्ढे पक्के बनाने चाहिए जिससे पोषक तत्वों का ह्रास रिसकर न हों। चिकनी भूमि में पक्के व कच्चे दोनों प्रकार के गड्ढे बनाये जा सकते है। गड्ढे छायादार व ऊँचे स्थान पर बनाने चाहिये जिससे वर्षा का पानी गड्ढो में न भरे।

सर्वप्रथम गड्ढे के पैंदे में 10–20 सेमी. की परत चारे या बिछावन की लगानी चाहिये। इसके बाद गोबर व मूत्र की 75–100 सेमी. परत डालनी चाहिए। तीसरी परत पुनः बिछावन की 75–100 से.मी. मोटी डालें। इस क्रम में गड्ढे की भराई भूमि सतह से 50 सेमी. ऊँचाई तक करें। इसके बाद ढेर को समतल कर 10 सेमी. मिट्टी की परत से गड्ढे को बन्द कर देना चाहिए। गड्ढे में खाद 5–6 माह में सड़कर तैयार हो जाता है।

3. **ट्रेंच विधि** – इस विधि में 6.0 मीटर लम्बाई, 1.5 मीटर चौड़ाई व 1.0 मीटर गहराई की ट्रेंच (खाई या नाली) तैयार की जाती है। इस विधि में ट्रेंच की लम्बाई बढ़ाई जा सकती है, परन्तु गहराई नहीं बढ़ाते है। इस विधि में बिछावन, मल–मूत्र आदि को गड्ढे के आधे भाग में भरते हैं। जब गड्ढे का आधा भाग भरते–भरते भूतल से आधा मीटर ऊँचा हो जाता है तो उसे गोलाकार या डोम आकार का रूप देकर गोबर तथा मिट्टी के मिश्रण से लेप देते हैं।

आधा भाग भर जाने के पश्चात् गड्ढे के दूसरे भाग को भर कर इसी प्रकार लेप करते हैं। इस विधि की विशेषता यह है कि जब तीन माह में दूसरा ढ़ेर बनता है तब तक पहले ढ़ेर की खाद सड़कर प्रयोग के लिये तैयार हो जाती है। इस तरह एक ही गड्ढे से पूरे वर्ष सड़ी हुई खाद खेत मे देने के लिए प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार तैयार की गई खाद में नाइट्रोजन की मात्रा भी अधिक होती है।

**सड़ी हुई गोबर की खाद की पहचान**– अच्छी सड़ी हुई गोबर का कोई भी घटक अलग से नही दिखाई देता है, खाद में किसी तरह की दुर्गन्ध नहीं आती है, खाद भुरभुरी तथा उसका रंग हल्का भूरा होता है।

**गोबर के खाद की प्रयोग विधि** – साधारणतया सभी फसलों में 10–15 टन प्रति हेक्टेयर व सब्जियों में 20–25 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद की मात्रा प्रयोग में लेते हैं। बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करते हैं। खेत में खाद को समान रूप से बिखेरकर हल से जुताई करके मिट्टी में मिलाते हैं। खेत में खाद डालने के बाद ज्यादा समय तक खुले में नही छोड़ना चाहिए अन्यथा खाद से नाइट्रोजन का ह्रास होता है। यदि खेत में कुछ समय के लिए खाद को खुला छोड़ना हो तो छोटी–छोटी ढेरियाँ नहीं करके बड़े ढेर के रूप में ही खाद को खेत में खुला छोड़ें।

### 2.3.2. कम्पोस्ट

कम्पोस्टिंग एक जैव–रासायनिक क्रिया जिसमें वायवीय तथा अवायवीय जीवाणु कार्बनिक पदार्थो को विघटित कर बारीक खाद बनाते हैं। यह पूर्ण सड़ा हुआ कार्बनिक पदार्थ की कम्पोस्ट कहलाता है। भारत में तैयार किया जाने वाला कम्पोस्ट इस प्रकार है –

1. **फार्म अवशिष्टों से तैयार कम्पोस्ट** – इसमें खरपतवार, फसल अवशेष, पशुओं का बचा हुआ चारा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ आदि काम में लिये जाते हैं।
2. **शहर व कस्बों के अवशिष्ट से तैयार कम्पोस्ट** – यह शहर का मल, कूड़ा–करकट अन्य कार्बनिक कचरा आदि से तैयार किया जाता है।

**कम्पोस्ट बनाने की विधियाँ**

1. इन्दौर विधि
2. बंगलौर विधि
3. नेडेप विधि

1. **इन्दौर विधि** – यह विधि ए. होवार्ड तथा यशवन्त डी. वाड के द्वारा **''इन्स्टीट्यूट ऑफ प्लांट न्यूट्रीशन''** इन्दौर में वर्ष 1924 से 1931 के मध्य विकसित की गई। इस कारण इसको इन्दौर विधि कहते हैं। इस विधि में पशुओं के गोबर, फसलों व पौधों के अवशेष तथा अन्य अवशिष्टों का प्रयोग कर कम्पोस्ट तैयार की जाती है।

इस विधि में कम्पोस्ट वायवीय दशा में चार माह में तैयार हो जाती है।

**विधि** – इन्दौर विधि से कम्पोस्ट बनाने की विधि इस प्रकार है –

1. **गड्ढे का आकार** – गड्ढे की लम्बाई 10 फीट या आवश्यकतानुसार बढ़ा सकते हैं। गड्ढे की चौड़ाई 6–8 फीट रखते हैं तथा गहराई 2–3 फीट रखते हैं। गड्ढे की गहराई 3 फीट से अधिक नहीं रखनी चाहिए। गड्ढा सदैव ढालू जगह पर बनाना चाहिए।
2. **कम्पोस्ट बनाने के लिये आवश्यक सामग्री** –
   (अ) पौधों व फसलों के अवशेष, खरपतवार, गन्ने की पत्तियाँ, लकड़ी की राख, धान की चूरी आदि मिश्रण।
   (ब) पशुओं की गोबर बिछावन सहित।
   (स) पशुओं के मूत्र से सोखी हुई मिट्टी भी कम्पोस्ट में काम में लेते हैं।
   (द) लकड़ी की राख, जो कम्पोस्ट की अम्लीयता कम करती है तथा पोटाश की मात्रा बढ़ाती है।
3. **गड्ढा भरने की विधि** – गड्ढे के प्रत्येक भाग में अपशिष्ट अलग–अलग परत में भरते है। पहली परत में पशुशाला से इकट्ठे किये गये कचरे की 3 इंच माटी परत रैक की सहायता से फैला देते हैं। अगर लकड़ी की राख उपलब्ध हो तो पशु मूत्र व कीचड़ के साथ उसके ऊपर फैला दें। उसके ऊपर 2 इंच मोटी गोबर की परत बिछाकर उसके ऊपर हल्की मिट्टी बिखेर देते हैं। पूरी सामग्री को गीला करने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी का छिड़काव करते हैं। इस प्रकार परत के बाद परत लगाते हुये गड्ढे को भरते है। गड्ढे को तब तक भरते रहें जब तक पूरी सामग्री की परत जमीन से एक फीट ऊपर तक न हो जाए। गड्ढे की लम्बाई के तीन–चौथाई भाग के भरने में 6–7 दिन से अधिक समय नहीं लगाना चाहिये तथा एक–चौथाई भाग को पलटने के लिए खाली रखना चाहिए। अन्त में बिछावन के साथ तथा पशु मूत्र की एक परत लगानी चाहिए। सुबह–सायं पानी का छिड़काव करें तथा इसे तीन बार दोहरायें। इस प्रकार कूड़े–करकट तथा गोबर द्वारा प्रचुर मात्रा में पानी सोख लिया जाता है तथा इसका प्रारम्भ हो जाता है, जिससे ढेर धीरे–धीरे सिकुड़ने लगता है। पूरे खाद को हफ्ते मे एक बार पलट दें। पहली, दूसरी व तीसरी पलटाई के समय पानी से भली भाँति गीला करते रहें।
4. **कम्पोस्ट को पलटना** – जीवाणुओं द्वारा विघटन के लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण सामग्री को भली–भाँति पलटकर मिला दिया जाए, ताकि वायु व नमी प्रचुर मात्रा में मिल सके। गड्ढों में सामग्री दबकर भूमि की सतह तक आ जायें तब गड्ढा भरने के 10–15 दिन बाद पूरा अपशिष्ट पलट दें। इस क्रिया में ऊपर का अपशिष्ट नीचे व नीचे का अपशिष्ट ऊपर आ जाता है। इसके बाद पानी का अच्छी प्रकार छिड़काव कर अपशिष्ट को नम कर लें। पहली पलटाई के बाद दूसरी पलटाई 15 दिन बाद करें तथा अन्तिम पलटाई दो माह बाद करें। तीन माह बाद अच्छी कम्पोस्ट तैयार हो जाती है।

वर्षा ऋतु में इस पद्धति से कम्पोस्ट जमीन के ऊपर ढेर बनाकर भी तैयार की जा सकती है लेकिन ढेर की ऊँचाई 2 फीट से अधिक नहीं होनी चाहिए।

2. **बैंगलोर विधि** – इस विधि का विकास सी.एन. आचार्य ने इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ साइन्स, बैंगलोर में किया। यह एक अवायुवीय विधि है तथा इस विधि का प्रयोग शहरी क्षेत्रों में खाद बनाने के लिए किया जाता है। इस विधि की मुख्य विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत खाद की पलटाई नहीं की जाती है।
   इस विधि से खाद तैयार करने के लिए सर्वप्रथम खाइयाँ या ट्रेंच तैयार की जाती है। ट्रैंचों का आकार शहर की आबादी पर निर्भर करता है। ट्रेंच की तली में 8'' से 10'' मोटी अवशेष पदार्थों की एक तह बिछाई जाती है। इसके ऊपर मानव विष्टा की 2'' मोटी तह बिछाते हैं । कचरा एवं विष्टा की एक तह के बाद दूसरी तह लगाते हुए भूतल से लगभग एक फुट ऊँचा कर लेते हैं। इसके बाद इसको 2.5 सेमी. मिट्टी की परत से ढक कर गोबर से लिपाई कर देते हैं। इस विधि में इन्दौर विधि की अपेक्षा श्रम की आवश्यकता कम होती है। इस विधि में पूर्ण विघटित खाद की मात्रा इन्दौर विधि से ज्यादा प्राप्त होती है।
3. **नेडेप कम्पोसट** – यह विधि महाराष्ट्र के कृषक नाडेप काका द्वारा विकसित की गई। इस विधि में निम्न सामग्री काम में ली जाती है।
   (अ) फार्म अवशेष, अपशिष्ट, कम्पोस्ट बनाने के लिये आवश्यक सामग्री– कपास व अरहर के डंठल, गन्ने की पत्तियाँ आदि करीब 1400–1500 किग्रा.।
   (ब) पशुओं की गोबर–90–100 किग्रा. (8–10 टोकरी)।
   (स) सूखी छनी मृदा– 1750 किग्रा. (120 टोकरी, पशुमूत्रयुक्त मिट्टी अधिक लाभकारी होती है)।
   (द) पानी मौसम अनुसार (वर्षा में कम तथा शुष्क मौसम में प्रचुर मात्रा में 1500–2000 लीटर होती है)।
   इस विधि में पशुओं के गोबर का कम प्रयोग किया जाता है। इस विधि में वायवीय प्रक्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थो का विघटन होता है तथा कम्पोस्ट तैयार होने में 90–120 दिन का समय लगता है। इस विधि से तैयार कम्पोस्ट में 0.5 –1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.5–0.9 प्रतिशत फॉस्फोरस व 1.2–1.4 प्रतिशत पोटाश होता है।

**नेडेप कम्पोस्ट टैंक** – ईटें या पत्थर आदि से जमीन के ऊपर टैंक (होदी) तैयार की जाती है। टैंक का आकार आयताकार जिसके अन्दर की लम्बाई 10 फीट, चौड़ाई 6 फीट तथा ऊँचाई 9 फीट रखते हैं। टैंक की दीवार 9 इंच मोटी होनी चाहिए। ईंटों की जुड़ाई मिट्टी से करते है,

सिर्फ टैंक की ऊपरी ईंटें सीमेन्ट से जोड़ते है जिससे टैंक गिरने का डर न रहें। हवा के आवागमन के लिए टैंक की चारों दीवारों में 7 इंच चौड़े छेद छोड़ने चाहिए। ईंट की दो परत के बाद तीसरी परत को जोड़ते समय प्रत्येक ईंट की जुड़ाई के बाद 7 इंच का छेद छोड़कर जुड़ाई करते हैं। इस प्रकार तीसरी, छठी तथा नवीं परत में छेद रखते हैं। यह छिद्र एकान्तर में छोड़े जाते हैं, एक के ऊपर दूसरा छिद्र न आये यह ध्यान रखना चाहिए। टैंक के अन्दर व बाहर की दीवारों और फर्श को टैंक भरने से पूर्व गोबर व मिट्टी के मिश्रण से भली प्रकार लीप देना चाहिए। टैंक सूखने के बाद ही प्रयोग में लायें।

**टैंक भरने की विधि** – टैंक भरने से पूर्व गोबर के घोल का छिड़काव टैंक के नीचे तथा दीवारों के अन्दर कर लेना चाहिए। टैंक की भराई 48 घण्टों में पूर्ण कर लेनी चाहिए अन्यथा कम्पोस्ट बनने की प्रक्रिया में बाधा आती है।

**प्रथम परत (वानस्पतिक पदार्थ)** – पहली 6 इन्च की परत फार्म के वानस्पतिक अवशेषों से भर देनी चाहिए, जो करीब 100 किग्रा. होते हैं।

**दूसरी परत (गोबर का घोल)** – गोबर या गोबर की लेही (करीब 4–5 किग्रा. गोबर को 125–150 लीटर पानी में घोल) का पहली परत पर एकसार छिड़काव करते हैं।

**तीसरी परत (साफ सूखी छनी मिट्टी)** – इस परत में 50–60 किग्रा. (4–5 टोकरी) साफ सूखी छनी मिट्टी की परत एकसार बिछा देते हैं तथा इसके ऊपर पानी का छिड़काव कर गीला कर लेते हैं।

इस प्रकार के तीन क्रमों में टैंक में परत बनाते रहते हैं जब तक ढेर टैंक दीवारों से 1.5 फीट ऊपर तक न आ जाये। साधारणतया 11–12 तहों में टैंक भर जाता है। टैंक के ऊपरी भाग को झोपड़ीनुमा आकार देते हैं। टैंक भरने के बाद ढक देते है तथा 3 इंच मोटी मिट्टी की परत (करीब 300–400 किग्रा. मिट्टी) की सहायता से अच्छी तरह बन्द कर देते हैं। इस बात का ध्यान रखें की टैंक के ढेर में दरार न पड़े क्योकि दरारों से गैस निकलती रहती है इसलिये इसके ऊपर पुनः लीपन करते रहें।

दूसरी भराई –15–20 दिन बाद कूड़ा–करकट दबकर नीचे बैठ जाता है तथा टैंक करीब 8–9 इंच तक खाली हो जाता है इसको उपरोक्त क्रमानुसार तीन परतों में भरकर गोबर व मिट्टी से लीप देना चाहिए। इस विधि से कम्पोस्ट तैयार होने में 3–4 माह का समय लगता है। कम्पोस्ट में 15–20 प्रतिशत नमी बनाये रखने के लिए गोबर व पानी के मिश्रण का छिड़काव करें, जिससे खाद में आवश्यक पोषक तत्व संरक्षित रह सकें।

साधारणतया एक टैंक से 160–175 घन फीट कम्पोस्ट जिसका वजन 3 टन के करीब होता है, प्राप्त होता है।

**कम्पोस्ट प्रयोग विधि** – सिफारिशानुसार (सामान्यता फसलों में 10–15 टन प्रति हेक्टेयर, सब्जियों में 20–25 टन प्रति हेक्टेयर) कम्पोस्ट की मात्रा को बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व खेत में डालकर हल चलाकर मिट्टी में भली–भाँति मिला लेना चाहिए।

### 2.3.3. वर्मीकम्पोस्ट

केंचुओं द्वारा कृषि अवशिष्ट को पचाकर उत्तम किस्म का कम्पोस्ट बनाया जाता है, जो वर्मीकम्पोस्ट कहलाता है। केचुएँ के अपशिष्ट मल, उनके कोकून सभी प्रकार के लाभकारी सूक्ष्म जीवाणु, मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्व और विघटित जैविक पदार्थो का मिश्रण वर्मीकम्पोस्ट कहलाता है। प्रकृति ने केंचुओं को अद्भुत क्षमता प्रदान की है। वे स्वयं के भार से अधिक मल–मूत्र का त्यागकर उत्कृष्ट कोटि का कम्पोस्ट बना सकते है। वर्मीकम्पोस्ट बना सकते है। वर्मीकम्पोस्ट में 1.2–2.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.6–1.8 प्रतिशत फॉस्फोरस तथा 1.0–1.5 प्रतिशत पोटाश की मात्रा पाई जाती है। इस कम्पोस्ट में एक्टीनोमाइसिटीज की मात्रा गोबर की खाद की तुलना में 8 गुना अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त वर्मीकम्पोस्ट में सूक्ष्म पोषक तत्व संतुलित मात्रा में तथा एन्जाइम व विटामिन भी पाये जाते हैं।

**केंचुओं के प्रकार** – प्रकृति में लगभग 700 किस्म के केचुएँ पाये जाते हैं। इनमें से 293 प्रजातियों को लाभकारी पाया गया है। मुख्यतया तीन प्रकार के केचुएँ अधिक लाभकारी हैं।

1. **एपिजिक** – ये भूमि में एक मीटर की गहराई तक ही जाते हैं और कृषि अपशिष्टों को अधिक खाते हैं। वर्मीकम्पोस्ट बनाने में इन्हीं केंचुओं का प्रयोग किया जाता है। इनकी कुछ प्रजातियाँ है। पेरेनिप्स, आर्वोशीकोली, फेरेटिमा इलोन्गेटा, आईसीनिया फोईटिडा आदि।
2. **इन्डोजिक** – ये केंचुएँ भूमि में गहरी सुरंग बनाते हैं (3 मीटर से अधिक) ये केंचुएँ कृषि अपशिष्टों को कम व मिट्टी को अधिक खाते हैं। यह किस्म जल निकास में उपयोगी है।
3. **डायोजिक** – ये केंचुएँ 1–3 मीटर की गहराई पर रहते हैं एवं दोनो प्रजातियों के बीच की श्रेणी में आते हैं।

राजस्थान की परिस्थितियों से आइसीनिया फोईटिड़ा प्रजाति के केंचुएँ सबसे उपयुक्त पाये गये है। लम्बाई 3–4 इंच और वजन आधा से एक ग्राम तक होता है। ये लाल रंग के होते है जो 90 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ व 10 प्रतिशत मिट्टी खाते हैं। तापमान, नमी एवं खाद्य पदार्थो की उपयुक्त परिस्थितियों के केंचुएँ चार सप्ताह में वयस्क होकर प्रजनन योग्य हो जाते है। एक केंचुआ एक सप्ताह में 2–3 कोकून देता है एवं एक

कोकून में तीन से चार अण्डे होते है। इस तरह एक प्रजनन केंचुआ 6 माह में 250 केंचुएँ पैदा कर सकता है।

**वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि** – वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करते हैं जो ऊँचा तथा छायादार हो। छाया नहीं होने की स्थिति में वर्मीबेड के ऊपर छप्पर डाल कर छाया करनी चाहिए, क्योकि केंचुओं को अधिक प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है। केंचुएँ अंधेरे में अधिक क्रियाशील रहते है। प्रजनन एवं खाद निर्माण क्रिया के लिये 30 प्रतिशत नमी 25–30° सेल्सियस तापमान आवश्यक है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए बेड (क्यारी) की लम्बाई 40–50 फीट और चौड़ाई 3–4 फीट रखते हैं। लम्बाई व चौड़ाई को आवश्यकतानुसार कम या ज्यादा कर सकते हैं, परन्तु वर्मीकम्पोस्ट तैयार होने पर उसको एकत्र करने में सुविधा के लिए चौड़ाई 4 फीट तक ही रखते हैं। आवश्यकतानुसार एक छप्पर के नीचे एक से अधिक क्यारियाँ बना सकते है। क्यारी में मामूली सड़ा हुआ भूसा, तिनके, कड़वी, जूट आदि को सतह पर 3 इंच की मोटाई में तह लगाकर बिछौना बनाया जाता है। बिछावन को पानी से नम कर दिया जाता है। इस बिछावन पर 2 इंच मोटाई की एक परत कम्पोस्ट या गोबर की बिछाई जाती है और पुनः इस परत को पानी से नम कर देते है। इस परत पर वर्मीकम्पोस्ट, जिसमें केंचुएँ व कोकून होते हैं, डाल दी जाती है। इस परत के ऊपर गोबर व मामूली सड़ा हुआ कृषि अपशिष्ट पदार्थ मिलाकर बिछा दिया जाता है। इस तरह परतों की कुल ऊँचाई लगभग डेढ़ फीट तक हो जाती है। इसको टाट या घास–फूस से ढक दिया जाता है। इस ढ़ेर पर समय–समय पर पानी का छिड़काव करना चाहिये। उचित परिस्थितियों में वर्मीकम्पोस्ट 60 दिन में बनकर तैयार हो जाता है। वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाने पर पानी का छिड़काव बन्द कर देते है जिससे केंचुएँ क्यारी में नीचे की परत में चले जाते है। उसके बाद ऊपर से वर्मीकम्पोस्ट को इकट्ठा कर लेते हैं।

**वर्मीकम्पोस्ट के लाभ** –

1. वर्मीकम्पोस्ट देशी खाद की तुलना में अधिक श्रेष्ठ किस्म का होता है। इसमें गोबर की खाद तुलना में अधिक मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते है।
2. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ जाती है अतः भूमि का कटाव रूकता है।
3. वर्मीकम्पोस्ट में एक्टीनोमाइसिटीज की मात्रा देशी खाद की तुलना में 8 गुणा अधिक होने से फसलों में रोग प्रतिरोधकता बढ़ती है।
4. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत मे हयूमस की मात्रा बढ़ती है।
5. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से खेत में खरपतवार व दीमक का प्रकोप कम होता है।
6. केंचएँ ऑक्सीन नामक हार्मोन्स का स्राव करते हैं जो पौधों की वृद्धि एवं रोगरोधी क्षमता बढ़ाता है।
7. वर्मीकम्पोस्ट टिकाऊ खेती के लिए बहुत महत्वपूर्ण है तथा यह जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम है।

**प्रयोग विधि** – वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग विभिन्न फसलों में अलग–अलग मात्रा में किया जाता है। खेत की तैयारी के समय 2.5–3.0 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग कर जुताई कर मिला लेते हैं। खाद्यान्न फसलों में 5–6 टन प्रति हेक्टेयर वर्मीकम्पोस्ट प्रयोग किया जाता है। वर्मीकम्पोस्ट भुरभुरा होने के कारण कृषक इसका उपयोग बुआई के समय ऊर कर भी करते है।

### 2.3.4. हरी खाद

दलहनी अथवा अदलहनी फसलों को हरी अवस्था में मृदा मे जीवांश पदार्थ एवं पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाने के उद्देश्य से खेत में जुताई कर दबाने की प्रकिया को हरी खाद कहते हैं। हरी खाद के लिये प्रयुक्त फसलों का मृदा में अपघटन (विच्छेदन) होता है। जिसके फलस्वरूप मृदा में जीवांश पदार्थ व विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती है। हरी खाद्य के प्रयोग से मृदा की रासायनिक, भौतिक व जैविक दशाओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। कृषक गोबर का उपयोग ईंधन के रूप में करता है अतः खेत में उचित मात्रा में गोबर की खाद व कम्पोस्ट का प्रयोग नहीं कर पाता है। अतः हरी खाद सस्ती, सर्वोत्तम और मृदा उर्वरता बनाए रखने के लिए उपयुक्त जीवांश खाद है। हरी खाद में पाये जाने वाले पोषक तत्व इसके बाद उगाई जाने वाली फसलों को आसानी से उपलब्ध हो जाते है।

**हरी खाद बनाने की विधियाँ** – भारत में विभिन्न राज्यों की जलवायु और मृदाएँ अनेक प्रकार की हैं। जलवायु और मृदा के अनुसार ही हरी खाद भी विभिन्न प्रकार से बनाई जाती है। उत्तरी व पश्चिमी भारत में हरी खाद की फसल उसी खेत में उगाकर दबाई जाती है। पूर्वी व मध्य भारत में हरी खाद की फसल मुख्य फसल के साथ बुआई कर तैयार की जाती है। दक्षिणी भारत में हरी खाद की फसल को खेत की मेड़ों पर उगाया जाता है या पेड़ व झाड़ियों की कोमल टहनियाँ, शाखाएँ व पत्तियों को इकट्ठा करके मृदा में दबाया जाता है। सामान्यतः हरी खाद निम्न विधियों से बनाई जाती है–

1. **खेत में हरी खाद की फसल उगाकर मृदा में दबाना** – इस विधि में हरी खाद बनाने के लिए जिस खेत मे हरी फसल उगाते है, उसी खेत में उसे पलटकर दबा देते है। इस विधि में हरी खाद के लिए दलहनी या अदलहनी फसल की बुआई की जाती है। फसल उन्हीं क्षेत्रों में उगाई जाती है जहाँ सिंचाई की पर्याप्त सुविधा हो। नमी अभाव में हरी खाद की फसल न तो वृद्धि कर सकती है, न ही दबाने पर सड़ पाती है। हरी खाद हेतु शीघ्र पकने वाली फसलें जैसे–ढेंचा, ग्वार, मूँग, उड़द, सनई, लोबिया आदि की बुआई कर पुष्पावस्था में खेत में दबा देते है।

2. **हरी खाद की हरित पर्ण विधि** – इस विधि में पेड़ों व झाड़ियों की कोमल (हरी) शाखाएँ, टहनियाँ व पत्तियाँ अन्य खेत या क्षेत्र से तोड़कर वाँछित खेत की मृदा में जुताई कर दबाते हैं। पौधों के कोमल भाग में थोड़ी नमी होने पर भी वे सड़ जाते हैं। इस विधि से हरी खाद उन क्षेत्रों में बनाते है जहाँ कि वार्षिक वर्षा कम होती है। इस विधि में अन्य खेत में उगाई गई हरी खाद की फसल को भी काटकर वांछित खेत में डालकर मृदा में दबा देते हैं। बहुत से पौधों को खेत की मेड़ों और बेकार भूमि में हरी पत्तियों के उद्देश्य से उगाया जाता है। इन पेड़ों और झाड़ियों की हरी पत्तियों को तोड़कर या काटकर खेत में डाल देते है। मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर इन पत्तियों को मृदा के अन्दर दबा देते हैं। इस प्रकार की पत्तियाँ दलहनी व अदलहनी दोनों प्रकार के पौधों को प्रयोग कर सकते है। उदाहरण – सुबबूल, करंज, सदाबहार, अमलताष, सफेद आक आदि।

**हरी खाद की फसल के आवश्यक गुण –**

1. फसल शीघ्र बढ़ने वाली होनी चाहिए।
2. फसल में पत्तियों व शाखाओं की संख्या अधिक हो, जिससे प्रति हेक्टेयर अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थ मिलाया जा सकें।
3. फसल के वानस्पतिक भाग मुलायम हों, ताकि वह आसानी से सड़ सकें।
4. फसल फलीदार (दलहनी) होनी चाहिए, जिससे उसके पौधों की जड़ों में ग्रन्थियाँ होने के कारण राइजोबियम द्वारा वायुमण्डल से नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण हो सके।
5. फसल गहरी जड़ प्रणाली की हो, जिससे मिट्टी भुरभुरी बन सकें और मृदा में गहराई से पोशक तत्व ग्रहण कर पौधे में संचित कर सके।
6. हरी खाद की फसल ऐसी होनी चाहिये जो कम उपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सके।
7. फसल में कीटों व बीमारियों का प्रकोप कम होता हो।
8. फसल कम अवधि की हो।
9. फसल को ज्यादा खाद व उर्वरक की आवश्यकता न हो।
10. फसल–चक्र में हरी खाद की फसल का उचित स्थान हो।
11. फसल को कम पानी की आवश्यकता हो।

हरी खाद के लिए उपयुक्त फसलें –हरी खाद के लिए प्रयोग मे लाई जाने वाली फसलों को दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं– दलहनी एवं अदलहनी फसलें।

1. **दलहनी फसलें** – दलहनी या फलीदार फसलें हरी खाद के लिये उपयुक्त रहती हैं, क्योकि इन फसलों की जड़ो की ग्रन्थियों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमण्डल से नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। साथ ही इन फसलों की वानस्पतिक बढ़वार भी अच्छी होती है तथा इनकी जड़ें भी गहरी जाती है व फसल अवधि भी कम होती है।

**सनई** – इसका प्रयोग उत्तरी भारत में किया जाता है। यह बुआई के 6–8 सप्ताह बाद मिट्टी में पलट दी जाती है। लगभग 50 किग्रा. नाइट्रोजन तथा 280 क्विंटल हरा वानस्पतिक पदार्थ प्रति हेक्टेयर इस फसल से प्राप्त हो जाता है।

**ढेंचा** – हरी खाद के रूप में ढेंचा का प्रमुख स्थान है। यह फसल ऊसर भूमियों के सुधार में भी काम में ली जाती है। 45 दिन में फसल को खेत में पलट दिया जाता है। इससे लगभग 75 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

**ग्वार** – भारत के उत्तरी और पश्चिमी भागों में जहाँ वर्षा कम होती है ग्वार हरी खाद के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे लगभग 65 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है।

**लोबिया** – खरीफ ऋतु में पौधों की अच्छी बढ़वार होने के कारण ही खाद के लिए यह महत्वपूर्ण फसल है। इससे 150 क्विंटल हरा पदार्थ तथा 50 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

2. **दलहनी फसलें**– ये फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण तो नहीं करती हैं, किन्तु विलय नाइट्रोजन का संरक्षण अवश्य करती है तथा मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करती हैं, जिनसे मृदा में सुधार होता है। हरी खाद के लिए अदलहनी फसलों में मक्का, जौ, ज्वार आदि का प्रयोग किया जाता है। कई बार खरीफ में खेत में खरपतवार उगने देते है तथा उनमें बीज बनने से पूर्व ही खेत में पलट दिया जाता है। हमारे देश में हरी खाद हेतु अदलहनी फसलों का प्रचलन नहीं है।

**हरी खाद प्रयोग करने की तकनीकी** – हरी खाद की फसल से उचित लाभ प्राप्त करने के लिए इसके प्रयोग करने की विधि का ज्ञान आवश्यक है। हरी खाद में खेतों में दबाने और अगली फसल की बुआई के मध्य इतना अन्तर होना चाहिए कि हरी खाद से प्राप्त पोषक तत्व अगली फसल को प्राप्त हो सकें।

1. **जलवायु और मृदा** – खरीफ में हरी खाद वाली फसलों के लिए गर्म और नम जलवायु उपयुक्त है। सामान्यतः 50 से 60 सेमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में हरी खाद की फसलों की वृद्धि अच्छी होती है। फसल के अपघटन के लिए उपयुक्त तापमान 25 से 35 सेल्सियस होता है। रबी में हरी खाद की फसलों को शुष्क व ठण्डी जलवायु की आवश्यकता होती है। हरी खाद के लिए बलुई हल्की दोमट मृदा से लेकर लवणीय व कम उपजाऊ मृदा उपयुक्त होती है।

## सारणी – विभिन्न मृदाओं में उगाई जाने वाली हरी खाद की फसलें

| मृदा | फसलें |
|---|---|
| भारी मृदा व जल प्लावित दशा | ढेंचा, सनई |
| अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा, लवणीय व क्षारीय मृदा | मूंग, उड़द, ग्वार, सनई, ढेंचा |
| शुष्क क्षेत्रों की हल्की बलुई दोमट मृदा | ग्वार, उड़द, मूंग, लोबिया |

2. **खेत की तैयारी** – हरी खाद के लिए खेत की विशेष तैयारी की आवश्यकता होती है। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के बाद पाटा चलाकर खेत समतल कर देते हैं।

3. **बीज बुआई** – हरी खाद के लिए बोई जाने वाली मुख्य फसलों की बीज दर इस प्रकार है।

| फसल | बीज दर (किग्रा./हे.) | फसल | बीज दर (किग्रा./हे.) |
|---|---|---|---|
| सनई | 50–60 | मूंग, उड़द | 15–20 |
| ढेंचा | 60–80 | लोबिया | 45–50 |
| ग्वार | 20–25 | | |

राजस्थान में हरी खाद की फसलों की बुआई वर्षा प्रारम्भ होते ही कर देते हैं। सिंचित क्षेत्रों में रबी की फसल कटते ही अप्रैल से जून तक पलेवा देकर हरी खाद फसलों की बुआईं करते हैं।

4. **खाद व उर्वरक** – हरी खाद के लिए बोई जाने वाली दलहनी फसलों की अच्छी बढ़वार के लिए बुआई के समय 20 किग्रा. नाइट्रोजन व 40 किग्रा. फॉस्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से देनी चाहिए। अदलहनी फसलों को नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर उपयोग ली जानी चाहिए। दलहनी फसलों में फॉस्फोरस की उपस्थिति में राइजोबियम जीवाणु अधिक क्रियाशील रहते हैं अतः नाइट्रोजन का यौगिकीकरण अच्छी प्रकार से होता है। फॉस्फोरस जैविक पदार्थ से मिलकर इस प्रकार यौगिक बनाता है कि अगली फसल को फॉस्फोरस सुगमता से उपलब्ध हो जाता है।

5. **सिंचाई** – सिंचित क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार फसल की सिंचाई करें। यदि सिंचाई से साधन उपलब्ध न हो तो वर्षा ऋतु में ही हरी खाद की फसल की बुआई करें।

6. **फसल को खेत में पलटना** – फसल की एक विशेष अवस्था पर पलटाई करने से भूमि को अधिकतम नाइट्रोजन व जीवांश पदार्थ मिलते हैं। फसल में जब पुष्पन प्रारम्भ हो जाये तथा उसकी टहनियाँ कोमल, रसीली, बिना रेशेदार और उस पर अधिकतम पत्तियाँ हो तब पलटना चाहिए। खरीफ में फसल को पलटने का कार्य अगस्त के प्रथम सप्ताह में कर लेना चाहिए। सामान्यतः ढेंचा तथा सनई को क्रमशः 45 व 50 दिन बाद पलटते हैं।

हरी खाद की फसल में पाटा चलाकर फसल को गिरा देते है। तत्पश्चात् मिट्टी पलटने वाले हल से फसल को खेत में दबा देते है। बलुई मृदाओं में फसल को गहराई तक तथा भारी मृदाओं में कम गहराई पर दबाते हैं। शुष्क मौसम की दशा मे फसल को गहराई पर तथा आर्द्र मौसम में कम गहराई पर दबाते है।

7. **हरी खाद का अपघटन** – हरी खाद से प्राप्त जीवांश पदार्थ के पूर्ण अपघटन में सूक्ष्म जीवाणुओं का बड़ा महत्व है। ये सूक्ष्म जीवाणु पहले हरे पदार्थो को सड़ाकर अमोनीकरण करते हैं और अन्त में नाइट्रेट को सुलभ अवस्था में उपलब्ध कराते हैं।

5. **हरी खाद की पलटाई और आगामी फसल में अन्तराल** – हरी खाद की फसल को खेत में पलटने और आगामी फसल के मध्य अन्तर जीवांश पदार्थ के अपघटन पर निर्भर करता है। सामान्यतः हरी खाद की पलटाई के डेढ़–दो माह बाद अगली फसल की बुआई करते हैं।

### 2.4 जैव उर्वरक – प्रकार एवं उपयोग विधि

जैव उर्वरक जीवित एवं प्रभावशील कृषि उपयोगी सूक्ष्म जीवों का वह उत्पाद है जिसके माध्यम से पर्यावरणीय मित्रता के साथ पौध पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाकर फसल उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। जैव उर्वरको में उपस्थित सूक्ष्म जीवों के माध्यम से वायुमण्डलीय नत्रजन का अधिक से अधिक मात्रा में स्थिरीकरण किया जा सकता है, अन्य अनुपलब्ध पौध पोषक तत्वों को घुलनशील कर या उनका अवशोषण क्षमता बढ़ाकर मृदा में उपलब्ध कराया जा सकता है, विभिन्न हारमोन्स

या अन्य पौध वृद्विकारक पदार्थो के उत्सर्जन के द्वारा अच्छी पौध वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है एवं विभिन्न कार्बनिक पदार्थो को शीघ्र अपघटित किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप फसलोत्पादन की लागत में कमी की जा सकती है। अतः टिकाऊ फसलोत्पादन के लिए जैव उर्वरकों का विशेष महत्त्व है।

यह सुनिश्चित है कि बिना सूक्ष्म जीवाणुओं के योगदान के कृषि उत्पादन भी असम्भव है। मुख्य पौध पोषक तत्वों में नत्रजन का विशेष हिस्सा है एवं एक हेक्टेयर भूमि के ऊपर लगभग 80,000 टन नत्रजन उपस्थित है लेकिन यह पौधों के लिये उपलब्ध नहीं है। प्रकृति में उपलब्ध सूक्ष्म जीवाणु वायुमंडल में उपलब्ध इस नत्रजन को स्थिरीकरण करके पौधों को उपलब्ध कराते हैं।

टिकाऊ कृषि में मृदा स्वास्थ्य के रखरखाव, पर्यावरण संरक्षण तथा पौधों को पोषक तत्व आपूर्ति के लिए जैव उर्वरक एक महत्त्वपूर्ण विकल्प है। जैविक खेती में भी जैव उर्वरकों का काफी महत्व हैं, क्योंकि जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग वर्जित है।

### जैव उर्वरक – परिभाषा

जैव उर्वरक एक उत्पाद है जो सूक्ष्म जीवों की जीवित एवं सुषुप्त जैव कोशिकाओं जैसे बैक्टिरिया, कवक, एक्टिनोमाइसिटिज, शैवाल आदि एकल या समन्वित समूह है जो किसी वाहक जैसे ठोस पदार्थ (लिग्नाइट अथवा कोयला) या द्रव्य में मिश्रित होता है जो नत्रजन स्थिरीकरण, अनुपलब्ध पौध पोषक तत्वों को पौधो को उपलब्ध कराने, पादप बढ़वार पदार्थो को स्रावित करने एवं साथ ही मृदा की क्रियाशीलता एवं गुणवत्ता तथा पौधों के स्वास्थ्य में वृद्विकरने में उपयोगी है।

जैव उर्वरकों के लाभ – जैव उवरकों के उपयोग से होने वाले लाभ निम्नानुसार है–

1. जैव उर्वरक पौधों को नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की आपूर्ति करते हैं।
2. ये पोषक तत्वों के सस्ते स्रोत हैं।
3. कुछ जैव उर्वरकों जैसे एजोटोबेक्टर, एजोला व नीलहरित शैवाल, हार्मोन्स, विटामिन आदि का स्राव करते हैं जिससे पौधों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
4. इनके उपयोग से फसलों की उपज में 20–40 प्रतिशत तक वृद्वि होती है।
5. कुछ जैव उर्वरक एन्टीबायोटिक उत्पन्न करते हैं जिससे मृदा जनित रोगों का प्रभाव कम होता है।
6. इनके उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है।
7. नील हरित शैवाल व एजोला नाइट्रोजन के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व जेसे लोहा, ताँबा, मैंगनीज, जस्ता आदि उपलब्ध कराते हैं।

### जैव उर्वरकों का वर्गीकरण

जैव उर्वरकों में खाद तथा उर्वरकों की तरह पोषक तत्त्व नहीं होते हैं (अजोला के अलावा ) लेकिन ये पोषक तत्वों को घुलनशील करने, उनको गतिमान करने, अवशोषण करने तथा वाहन करने में मदद करते हैं। जैव उर्वरकों को कई बार बायो–इनओकुलेन्ट (Bio-inoculant) या सूक्ष्म जीवाणु कल्चर (Bio-culture) के नाम से भी पुकारा जाता हैं। जैव रसायन क्रियाओं तथा विशेष पोषक तत्व के प्रति अनुक्रिया के आधार पर जैव उर्वरकों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है।

#### (अ) नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु

- **सहजीवी (Symbiotic)** – सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण को तीन समूहों में विभक्त किया गया है।
  1. दलहनी फसलों के साथ सहजीवी, उदाहरण – राइजोबियम, बैक्टीरिया
  2. दलहनी फसलों के अलावा पौधों के साथ सहजीवी, उदाहरण– एजोस्पाइरिलम, एसीटोबैक्टर
  3. ऐजोला फर्न के साथ सहजीवी, उदाहरण – एनाबिना
- **मुक्तजीवी (Free living)–** मुक्तजीवी को दो भागों में विभक्त किया जाता है:
  1. बैक्टीरिया जिनमें परपोषित एवं प्रकाश–संश्लेषी हैं, उदाहरण – ऐजोटोबेक्टर, कलोस्ट्रीडियम, क्लेबसियला
  2. नीली हरी शैवाल जो कि प्रकाश संश्लेषी है।

#### (ब) फास्फोरस रूपान्तरण

- **फास्फोरस विलयकारी जीवाणु** – जो कि अपनी वृद्वि के दौरान कार्बनिक या अकार्बनिक अम्ल बनाते हैं जो कि फॉस्फोरस की विलेयता को बढ़ाकर पौधों को उपलब्ध कराते हैं, जैसे कि बैक्टीरिया (पी.एस.बी.) एवं कवक।
- **सहजीवी कवक** – कवक पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाकर मृदा में उपलब्ध फॉस्फोरस के उद्ग्रहण में सहायक होते हैं। साधारणतया फॉस्फोरस विलेयता में इनका योगदान नहीं होता है। उदाहरण – वेसिकूलर अरबस्कूलर

#### (स) कम्पोस्ट उत्प्रेरक

कम्पोस्ट के बनाने के लिए उपयोग किये गये कार्बनिक पदार्थों के अपघटन में परपोषी जीवाणुओं का उपयोग किया जाता है जो कि कार्बनिक पदार्थों के कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात को कम करने में सहायक होते हैं और उनमें उपस्थित तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाते है। ये जीवाणु बैक्टीरिया, कवक एवं ऐक्टिनोमायसिटीज होते हैं। इनमें ट्राइकोडर्मा, सेल्सूलोमोनास, पेसिलियोमाइसीज, एस्परजिलस आदि प्रमुख है।

**(द) पौध वृद्धिकारक राइजोबेक्टिरिया (PGPR)**

ये जीवाणु पोषक तत्व प्रदान नहीं करते हैं अपितु हार्मोन उत्पादन, पौध कोशिका में विशिष्ट आयन वहन तथा संरक्षण रसायनों के उत्सर्जन के माध्यम से पौध वृद्धि को बढ़ाने में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए सूडोमोनास बैक्टीरिया।

**(त) जिंक विलयकारी जैव उर्वरक**

मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक को आसानी से उपलब्ध कराने के लिए बेसिलस सुबिटिलिस, थायोबोसिलस थायोक्सिडंस और सैकोरोमांइस स्पीसिज सूक्ष्मजीवों को जैव–उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

**(य) पोटेशियम विलयकारी जैव उर्वरक**

पोटेशियम संचलन को बढ़ाने के लिए केले के राइजोस्पेयर से जीवाणु पृथक और विकसित किया गया है जिससे पोटेशियम का आसानी से पौधों द्वारा अवशोषण किया जा सकता है। फ्रैटुरिया ऑरेंटिया की एक नई जीवाणु प्रजाति जो एक बायोइनोकुलर है जिसके प्रयोग से पोटाश उर्वरक का उपयोग कम किया जा सकता है।

उर्वरक नियंत्रण आदेश, 1985 के अनुसार प्रति ग्राम सूखे वाहक में जीवाणुओं की संख्या (राइजोबियम/एजेटोबेक्टर/एजोस्पाइरीलियम/एसीटोबेक्टर/फॉस्फोरस घुलनशील बैक्टिरिया/पोटेशियम मोबिलाइजिंग बैक्टीरिया/जिंक विलयकारी बैक्टीरिया) कम से कम $1\times10^7$ या प्रति मिलीलीटर द्रव्य वाहक में जीवाणुओं की संख्या $1\times10^8$ होनी चाहिए।

**नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु**

**राइजोबियम** – यह एक जीवाणु है जो दलहनी फसलों की जड़ों पर पाई जाने वाली ग्रन्थियों में रहता है। ये जीवाणु वायुमण्डल से नाइट्रोजन का अवशोषण कर उसका स्थिरीकरण करते हैं जो अन्ततः पौधों को उपलब्ध होती है। राइजोबियम कल्चर सबसे अधिक उपयोग होने वाला जैविक उर्वरक है। यह केवल दलहनी फसलों में ही प्रयोग किया जाता है। राइजोबियम की विशेष प्रजाति ही दलहनी फसल की एक विशेष प्रजाति के साथ जड़ ग्रन्थियाँ बनाते है जिसे क्रॉस इनआक्यूलेशन (Cross inoculation group) समूह कहा जाता है जो कि फ्रेड एवं साथियों द्वारा 1932 में प्रतिपादित किया गया है। राइजोबिया तथा दलहन फसलों की आपस में जड़ ग्रन्थियाँ बनाने की विशेषता के आधार पर तीन जीवाणु वंशों यथा राइजोबियम, ब्राडिराइजोबियम एवं एजोराइजोबियम के क्रॉस इनआकूलेशन समूह का वर्गीकरण या विवरण निम्न तालिका–1 में दिया गया है।

1. **एजोटोबेक्टर** – यह जीवाणु स्वतंत्र रूप से मृदा में रहते हैं। ये बैक्टीरिया ग्राम नेगेटिव है। ये पौधों की जड़ क्षेत्र के समीप रहते हुए वायुमण्डल से नाइट्रोजन ग्रहण कर उसका स्थिरीकरण करते हैं। इस जैव उर्वरक का प्रयोग गैर दलहनी फसलों जैसे गेहूँ, जौ, मक्का, सब्जियों आदि में किया जाता है।
2. **एजोस्पाइरिलम**– यह एक वायु प्रिय जीवाणु है जो मृदा में स्वतंत्र रहकर वातावरणीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध करवाते हैं। इस जैव उर्वरक का उपयोग चावल, ज्वार, गन्ना, बाजरा, सब्जियों आदि में किया जाता है।

**नाइट्रोजनधारी जैव उर्वरकों की उपयोग विधि** – नीलरहित शैवाल तथा एजोला के अलावा सभी जैव उर्वरकों का निम्न प्रकार प्रयोग किया जाता है।

**1. बीज उपचार**

राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम एवं फास्फेट

**तालिका 1: दलहनी फसलें एवं क्रॉस इनआकूलेशन समूह**

| राइजोबियम समूह | राइजोबियम प्रजाति | फसल |
|---|---|---|
| राइजोबियम :<br>तीव्र वृद्धि करने वाले | राइजोबियम मेलीलोटी | रिजका, मेथी, सैंजी |
| | राइजोबियम लेग्यूमिनोसेरम | मटर, मसूर |
| | राइजोबियम फेजियोलाई | राजमा, सेम, मोठ |
| | राइजोबियम ट्राइफोली | बरसीम |
| | राइजोबियम लोटी | तिपतिया घास (लोटस स्पीसीज) |
| | राइजोबियम फ्रेडी | सोयाबीन (ग्लीसीन मेक्स, ग्लीसीन सोजा) |
| ब्राडिराइजोबियम<br>धीमी वृद्धि करने वाले | ब्राडिराइजोबियम जापोनिकम | सोयाबीन |
| | ब्राडिराइजोबियम एलकानी | सोयाबीन |
| | ब्राडिराइजोबियम स्पीसीज "लोबिया" | लोबिया, मूंग, उड़द, चना, अरहर, मूँगफली, इत्यादि। |
| एजोराइजोबियम<br>तीव्र वृद्धि करने वाले | एजोराइजोबियम कौलिनोडेन्स | ढेंचा (सेसबानिया रोसट्राटा) |

विलयकारी जैव उर्वरकों ( पी.एस.बी. कल्चर) के प्रयोग के लिए बीज उपचार विधि ही सुविधाजनक, सस्ती, उत्तम एवं अधिक प्रचलन में है। सामान्यतः 10 से 12 किग्रा. बीज को उपचारित करने के लिए एक पैकेट (200 ग्राम) जैव उर्वरक पर्याप्त होता है। बीज उपचार निम्न प्रकार से करें –

- आधा लीटर पानी में 50 ग्राम गुड़ को घोलकर उबालें। घोल ठण्डा हो जाने पर 200 ग्राम जीवाणु खाद को इसमें मिलावें ।
- इसके बाद घोल को 10–12 किलो बीज के ढेर पर धीरे धीरे डालकर हाथों से मिलाएं जिससे कि जैव उर्वरक अच्छी तरह और समान रूप से बीजों पर चिपक जाये।
- इस प्रकार तैयार उपचारित बीज को छाया में सुखाकर तुरन्त बुआई कर दें।

### 1. पौध/जड़ उपचार

रोपाई की जाने वाली फसलों जैसे टमाटर, गोभी, बैगन, मिर्च, प्याज आदि के लिए यह विधि सर्वोत्तम है। इस विधि में जैव उर्वरकों की मात्रा बीज उपचार की अपेक्षा कुछ ज्यादा लगती है परन्तु जड़ उपचार विधि द्वारा अधिक संख्या में जीवाणु पौध जड़ों पर चिपक कर जड़ों के पास पहुँच जाते हैं जिससे उपचारित पौध रोपाई पर पौध वृद्धि अच्छी होती है। पौध/जड़ उपचार निम्न प्रकार से करें –

- जीवाणु खाद का जड़ोपचार द्वारा प्रयोग रोपाई वाली फसलों में करते हैं।
- इसके लिए 4 किलोग्राम जैव उर्वरक का 20–25 लीटर पानी में घोल बनायें।
- एक हैक्टर के लिए पर्याप्त पौध की जड़ों को 20–25 मिनट तक उपरोक्त घोल में डुबोकर रखें।
- इसके बाद उपचाारित पौध को छाया में रखें तथा यथाशीघ्र रोपाई कर दें।
- बर्तन में बचे हुए घोल में मिट्टी या राख या कम्पोस्ट खाद अच्छी तरह से मिलाकर खेत में मिट्टी मिला दें, बाहर न फेकें।

### 3. मृदा उपचार

इस विधि द्वारा एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम एवं फास्फेट विलयकारी जैव उर्वरकों ( पी.एस.बी. कल्चर) का प्रयोग सभी खाद्यान्नों की फसलों, तिलहन फसलों, सब्जी फसलों, फूलों आदि में किया जा सकता हैं। मृदा उपचार निम्न प्रकार से करें –

- मृदा उपचार के लिए 50 किलोग्राम मिट्टी या कम्पोस्ट खाद में 5 किलोग्राम जीवाणु खाद को अच्छी तरह मिलाएं।
- इस मिश्रण को एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में बुआई के समय या बुआई से 24 घण्टे पहले समान रुप से छिड़के और बुआई कर दें।

### 4. कंद उपचार –

1 किग्रा. कल्चर का 40–50 लीटर पानी में घोल तैयार करते हैं। घोल में आलू, लहसुन, गन्ना आदि के टुकड़ों को 10 मिनट तक डुबोकर बुआई करते हैं।

**नील हरित (काई शैवाल)–** इसे सायनोबैक्टिरिया भी कहते हैं। यह पानी की सतह पर पाई जाने वाली उपयोगी व लाभदायक काई है, जो नीले–हरे रंग की होती है। यह सूर्यप्रकाश में अपना भोजन स्वयं बनाकर, वायुमण्डल की नत्रजन का स्थिरीकरण कर पौधों को उपलब्ध कराती है लेकिन यहाँ यह जान लेना चाहिए कि सभी शैवाल नत्रजन का स्थिरीकरण करने में सक्षम नहीं होते। ऐसी नील हरित शैवाल जिनमें एक विशेष संरचना हिटरोसिस्ट पाई जाती है, नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने में सक्षम है। यह शैवाल 25–30 किग्रा. नाइट्रोजन का प्रति हेक्टेयर यौगिकीकरण करती है। इसका उपयोग धान के खेतों में किया जाता है। इसकी कुछ मुख्य प्रजातियाँ है एनाबिना, नोस्टॉक, साइटोनिया, आसीलेटोरिया आदि।

**नील हरित शैवाल का उत्पादन–** इसके उत्पादन के लिए एक गड्ढा बनाकर पॉलीथीन बिछा देते है या 6" × 3" × 9" आकार की गेल्वेनाइज्ड लोहे की चद्दर की ट्रे बनवा लेते हैं। 6" × 3" × 9" आकार के गड्ढे में पॉलिथीन बिछाने के बाद 10 किग्रा. भुरभुरी मिट्टी तथा 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट डालकर 6" पानी भर देते है। जब मिट्टी पैंदे में बैठ जाये तो मृदा आधारित नील हरित शैवाल के कल्चर को 250 ग्राम लकड़ी के बुरादे के साथ मिलाकर 100 ग्राम प्रति गड्ढे के हिसाब से उपचारित करते है। यदि गड्ढे में हरी काई दिखाई दे तो 0.05 प्रतिशत कॉपर सल्फेट के घोल का छिड़काव करना चाहिए। 10–15 दिनों के बाद गड्ढों के ऊपर काई की एक मोटी परत कालीन की तरह पानी के ऊपर तैरने लगती है। इस काई को या तो एकत्रित कर लेते हैं या गड्ढों का पानी पूर्ण रूप से सूखने देते हैं और नील हरित काई को सूखी पपड़ी के रूप में एकत्र कर पॉलीथीन की थैलियों में भर लेते हैं।

**प्रयोग विधि –** इसका उपयोग धान की रोपाई के 7 दिन बाद करते हैं तथा जिस खेत में इसका उपचार करते हैं उसमें पानी स्थिर एवं 8–10 सेमी. हमेशा भरा रहना चाहिए। खेत में 8–12 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से नील हरित शैवाल का छिड़काव करते है। कल्चर डालने के बाद 4–5 दिनों तक पानी स्थिर रहना चाहिए।

**एजोला –** एजोला पानी में तैरने वाली एक प्रकार की फर्न है जो इसकी पंखुड़ियों में उपस्थित नीली हरी काई ऐनाबिना के साथ सह जीवन द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करती है। एजोला कल्चर के उपयोग से पता चला है कि इसमें 40 से 100 किलोग्राम नाइट्रोजन/हेक्टेयर यौगिकीकृत हो सकती है। भारत में एजोला की पाठ्यक्रम/इकाई 3 प्रजाति एजोला पिन्नेटा पाई जाती है। लेकिन इसकी नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता कम होने के कारण धान की फसल में एजोला माइक्रोफिला तथा एजोला केरोलिनिआना का उपयोग किया जाता है। एजोला प्रतिदिन 1.0–1.5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर तक नाइट्रोजन जमा करने की क्षमता

रखता है। 20–25 दिन के भीतर इससे प्रति हेक्टेयर औसतन 20–40 किग्रा. नाइट्रोजन प्राप्त होती है।

**एजोला उत्पादन विधि** – अच्छी तरह तैयार खेत में 5 मी. × 2 मी. आकार की क्यारियाँ बनाकर उसमें 5–10 सेमी. पानी भर देते हैं। इसके बाद 0.5–1.5 टन प्रति हेक्टेयर (50–100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) के हिसाब से ताजा स्वस्थ एजोला क्यारियों में डालते हैं। 15–20 दिन बाद एजोला की एक मोटी तह बन जाने पर इसका 1 भाग बांस की सहायता से निकाल लेते है और शेष भाग को फिर बढ़ने देते हैं। 100 वर्ग मीटर क्षेत्र से प्रति सप्ताह 10 किग्रा. एजोला प्राप्त हो सकता है। एजोला की अच्छी बढ़वार हेतु प्रति सप्ताह 5–8 किग्रा. सुपर फॉस्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से डालते हैं।

**प्रयोग विधि** – एजोला का उपयोग धान के खेत में रोपाई के पहले हरी खाद के रूप में या रोपाई के बाद धान के साथ इसका संवर्धन किया जाता है। प्रथम विधि में इसका प्रयोग केवल उन्हीं क्षेत्रों में सम्भव है जहाँ रोपाई के पहले पर्याप्त पानी उपलब्ध हो। खेत को तैयार कर छोटी–छोटी क्यारियों में बाँट कर 5–10 सेमी. भर देते हैं। क्यारियों में 1.0–2.0 टन प्रति हेक्टेयर की दर से एजोला डाल देते हैं। 10 किग्रा. सुपर फॉस्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से तीन बराबर भागों में खेत में डालें। 15–20 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाने पर खेत से पानी निकाल कर हल चलाकर एजोला को मिट्टी में मिला दें। बाद में धान की रोपाई कर दें।

धान के साथ एजोला प्रयोग के लिए 0.5–1.0 टन एजोला प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई के एक सप्ताह बाद खेत में डालें। 20–25 दिन बाद एजोला की मोटी तह बन जाती है। इसको मिट्टी में मिला दें। मिट्टी में नहीं मिलाने पर एजोला अपने आप सड़ जाता है और फसल को पर्याप्त लाभ देता हैं।

### फॉस्फोरस विलेयक जैव उर्वरक (पी.एस.बी.)

फॉस्फोरस विलेयक जैव उर्वरक सूक्ष्म जीवाणुओं का एक ऐसा कल्चर है जिसमें अविलेय फॉस्फोरस को विलेय बनाने की क्षमता पायी जाती है। वैसे तो बहुत से जीवाणु, एक्टीनोमाइसीट्स एवं कवक में फॉस्फोरस की विलेयता बढ़ाने के गुण पाये जाते हैं लेकिन जैव उर्वरक निर्माण के लिए कुछ गिने चुने वंश के सूक्ष्म जीवाणु ही औद्योगिक स्तर पर प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके लिए 4 किलोग्राम जैव उर्वरक का 20–25 लीटर पानी में घोल बनायें।

**प्रयोग विधि** – पी.एस.बी./पी.एस.एम. कल्चर का उपयोग भी एजोटोबेक्टर या राइजोबियम की तरह ही बीज, भूमि उपचार व पौध उपचार के रूप में किया जाता है जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

**माइकोराइजा** – यह एक विशेष प्रकार का कवक होता है जो बहुशाखीय लम्बे तंतुओं से बना होता है। पौधों तथा दाल फसलों की जड़ों में इसके तंतु प्रवेश कर जाते हैं। तंतुओं का वह भाग जो जड़ों के बाहर रहता है मिट्टी से लगातार फॉस्फोरस अवशोषित करता रहता है। यह फॉस्फोरस तंतुओं के अन्दर गति कर पौधों की जड़ क्षेत्र के अन्दर पहुँच जाता है। कवक व पौधों की जड़ों के बीच सह–जीविता होती है जिससे कवक मृदा से जल एवं खनिज लवणों को अवशोषित कर पौधों को प्रदान करता है तथा पौधे कवक को कार्बनिक भोज्य पदार्थ प्रदान करते हैं। **उदाहरण**– अरबूस्कूलर माइकोराइजा का उपयोग मक्का में किया जाता है।

### मिश्रित जैव उर्वरक

सामान्यतः नत्रजन स्थिरीकरण या स्फुर घोलक जैव उर्वरकों का अलग–अलग उपयोग अनुशंसित है परन्तु प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि मिश्रित जैव उर्वरक जिसमें नत्रजन स्थिरीकारक स्फुर घोलक, पौध वृद्विबढ़वार में सहायक जड़ीय जीवाणु (पी.जी.पी.आर) एवं वेम (VAM) फफूंद के संयुक्त मिश्रण का उपयोग करने से गैर दलहनी, दलहनी एवं तिलहन फसलों की बढ़वार में अच्छी वृद्विहोती है। नत्रजन एवं स्फुर जनित रासायनिक उर्वरकों की खपत में लगभग 10–25 प्रतिशत की बचत होती है एवं इनकों कार्बनिक पदार्थो के साथ उपयोग किया जाये तो फसलोत्पादन पर और अच्छा प्रभाव पड़ता है। इस जैव उर्वरकों का प्रभावी एवं धनात्मक योगदान विभिन्न फसलों जैसे मिर्च, कपास, उड़द, सोयाबीन, अरहर आदि पर भी देखने को मिला है।

### तरल जैव उर्वरक

आजकल ठोस वाहक के स्थान पर तरल वाहक का उपयोग बढ़ रहा है। तरल जैव उर्वरक या लिक्विड बायो फर्टिलाइजर ऐसा तरल ससपेंशन हैं जिनमें खेती के लिहाज से उपयोगी जीवाणु होते है। मृदा उर्वरता के प्रबंधन और पोषक तत्वों की निरंतर उपलब्धता बनाये रखने हेतु तरल जैव–उर्वरकों जैसे – राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, फास्फोरस, पोटाश एवं जिंक

**सारणीः फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बदलने वाले सूक्ष्म जीव**

| क्र.सं. | जैव उर्वरक के प्रकार | प्रयुक्त सूक्ष्म जीवाणु |
|---|---|---|
| 1. | फॉस्फोरस घोलक बेक्टीरिया (पीएस.बी.) | बेसीलस मेगाथिरियम, बेसिलस पोलीमिक्सा, सुडोमोनास स्ट्राइटा आदि |
| 2. | फॉस्फोरस घोलक फफूंद (पीएस.एफ.) | एसपरजिलस अवामोरी, एसरजिलस केन्डीडस आदि |
| 3. | फॉस्फोरस घोलक एक्टीनोमाइसिटिज (पी.एस.ए.) | स्ट्रेप्टोमाइसिज स्पीशिज |

घोलक जीवाणु आदि अत्यंत उपयोगी आदान है। स्थानीय जलवायु के आधार पर कुछ ऐसे सूक्ष्म जीवों द्वारा तरल उर्वरक तैयार किये जा रहे हैं, जो अलग–अलग स्थान और जलवायु में कारगर सिद्ध हुए हैं। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि जहाँ रासायनिक खादों का उपयोग नहीं होता है वहाँ ये जीवाणु आदान अधिक प्रभावी हैं। इस जैव उर्वरक का उपयोग पर्यावरण के अनुकूल है और रासायनिक उर्वरक का उपयोग सीधे 15 से 40 प्रतिशत कम कर देता है। इसे बगैर किसी खास इंतजाम के लंबे समय तक रखा जा सकता है तथा ठोस वाहक जैव उर्वरकों की तुलना में इसकी सग्रंहण जीवन अवधि एक से दो वर्ष तक हो सकती है। इस लिक्विड बायो फर्टिलाइजर के उपयोग से भारतीय किसानों को जैविक फसल उगाने में सहायता मिलेगी और वे अंतरराष्ट्रीय बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिक सकेंगे।

### तरल जैव–उर्वरक की उपयोग विधियाँ

1. **बीज उपचार :** 1 किलो बीज को 5 मिली. तरल जैव–उर्वरक के साथ मिलाते हैं, और बीजों को बुआई के पहले उपचारित कर छाया में सूखने के लिए रख दे।
2. **जड़/पौध उपचार :** 50 मिली. तरल जैव–उर्वरक को 1 ली. पानी में मिलाते हैं, और जड़ो को 15 से 20 मिनट घोल में डुबोये रखने के बाद बुआई करें।
3. **मिट्टी उपचार :** मुख्य क्षेत्र और पौधघर में एक एकड़ में 250 मिली. जैव–उर्वरक को 100 किलो मिट्टी के साथ मिलाते हैं एवं खेत में मिला देते हैं।
4. **बूंद–बूंद सिंचाई :** बूंद–बूंद एवं फव्वारा सिंचाई विधि से तरल जैव उर्वरक प्रयोग करने के लिए एक हेक्टेयर में 1 ली. जैव–उर्वरक को डालते हैं।

### तरल जैव–उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियाँ

- जैव–उर्वरकों को नामांकित फसल के लिये ही उपयोग में लेना चाहिये।
- जैव–उर्वरकों को उपयोग से पहले बोतल को अच्छे से हिलाकर बीजोपचार करें।
- जैव–उर्वरकों को ठण्डी जगह पर रखें और धूप एवं गर्मी से बचाये।
- जैव–उर्वरकों और रासायनिक उर्वरकों को एक साथ मिलाकर प्रयोग ना करें।
- जैव–उर्वरकों को उसको अंतिम तिथि से पहले ही उपयोग में ले।
- बीजों को पहले फफूंदनाशक फिर कीटनाशक तथा अंत में जैव–उर्वरक से उपचारित करें।

जैव उर्वरकों के व्यापारिक उत्पादन के जाति विशेष के जीवाणु कोशिकाओं की जीवित दशा में आपूर्ति के लिए ठोस या तरल वाहकों का उपयोग किया जाता है।

तरल जैव उर्वरकों में तरल मीडिया (पानी या तरल आधारित पदार्थ), एडिटिक स्टेबलाइजर एवं स्टीकर पदार्थों (पॉलीविनाइल पायरलिडोन, पोलीविनाइल अल्कोहल) गिलसरोल, मिथाइल सेलुलोज, सोडियम एल्जीनेट गोंद आदि का उपयोग किया जाता है। इस कारण तरल जैव उर्वरक की संग्रहण जीवन अवधि एक वर्ष से ज्यादा तथा जीवाणु कोशिकाओं की सजीवता अधिक तापमान ($45^{\circ}$ सेन्टीग्रेड तक) पर भी बनी रहती है।

## 2.5 कृषि पंचांग (Krishi Panchang)

भारतीय चिन्तन और जीवन शैली आदिकाल से प्रकति सापेक्ष रहे हैं। भारतीय जीवन दृष्टि में ज्ञान–विज्ञान की अभिव्यक्ति भी अध्याय दर्शन से होती है। शास्त्र–पुराणादि में भारत में प्राचीनकाल से ही मुहूर्त देखकर कृषि कार्य करने का प्रचलन रहा है। कृषक ग्रह, नक्षत्रों व चन्द्रमा की स्थिति को देखकर फसल की बुआई, कटाई, फसल का चुनाव आदि कृषि कार्य करते थे। परन्तु शनैः शनै यह ज्ञान समाप्त होता गया। सन् 1924 मे विद्वान दार्शनिक डॉ. रूडोल्फ स्टेनर ने एक वैकल्पिक कृषि के रूप में बॉयोडायनेमिक खेती की विचार धारा का प्रतिपादन किया, जो बाद में विश्व के कई देशों में व्यवसायिक रूप से अपनायी जाने लगी। बॉयोडायनेमिक खेती को जैव गति की कृषि भी कहा जाता है जिसमें नक्षत्रों की गति के आधार पर कृषि क्रियाओं का क्रमवार वैज्ञानिक विधि से अपनाने पर जोर दिया जाता है जिससे आकाशीय/नक्षत्रीय ऊर्जा का प्रभाव वनस्पति/पौधों के भागों जैसे जड़ पत्ती, फल एवं बीज पर पड़ता है और पैदावार में गुणोत्तर वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। प्रतिवर्ष नक्षत्रों की गति के आधार पर जैव गतिकीय कृषि एवं बागवानी पंचांग तैयार किया जाता है जिसके अनुसार कृषि कार्य उपयुक्त समय पर करने से लाभ होता है। रूडोल्फ स्टेनर के अनुसार प्रत्येक खेत प्राणी के समान जीवित माध्यम है।

यह वैज्ञानिक तथ्य है कि पृथ्वी पर उपस्थित जल को चन्द्रमा अपनी ओर आकर्षित करता है। पौधों की कोशिकाओं में जल प्रमुखता से पाया जाता है। अतः यह माना जा सकता है कि चन्द्रमा की गतिविधियों का प्रभाव निश्चित रूप से पौधों पर पड़ता है। भूमि में उपलब्ध जल का प्रभाव फसल पौधो पर पड़ता है। भूमि में उपलब्ध जल का फसल उत्पादन के लिये अत्यधिक महत्व है। विश्व में कई देशों जैसे आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, जर्मनी आदि में प्रतिवर्ष कृषि पंचांग प्रकाशित हो रहा है जिसका उपयोग वहाँ के कृषक कृषि कार्यो में करके बेहतर फसल उत्पादन कर रहे हैं। कृषि पंचांग मूलतः चन्द्रमा की गति पर आधारित है। भारत में विक्रम संवत मास, पक्ष और तिथि कृषि पंचांग के प्रमुख अंग हैं।

### चन्द्रमा की विभिन्न अवस्थाएँ (चन्द्रकलाएँ : तिथि)

**प्रथम पक्ष (शुक्ल पक्ष)** – चन्द्रमा की गति अन्धकार से प्रकाश की ओर गति होती है। प्रारम्भ में सूर्य एवं पृथ्वी के बीच अवस्थित चन्द्रमा की बाहरी पृथ्वी फलक की ओर गतिमान होता है। लगभग 7 दिनों (प्रथम भाग) में चन्द्र मध्य बिन्दु तक पहुँचकर

अर्द्ध प्रकाशित होता है तथा अगले 7 दिनों (द्वितीय भाग) में चन्द्र बाहरी बिन्दु तक पहुँचकर पूर्ण प्रकाशित होता है जिसे पूर्णिमा कहते हैं।

**द्वितीय पक्ष (शुक्ल पक्ष)** – इस कला में चन्द्रमा पुनः अपनी पुर्व स्थिति में पहुँचने के लिये गतिमान होता है तथा अगले 7 दिनों (तृतीय भाग) में चन्द्रमा का आधा भाग सूर्य की तरफ होता है एवं आधा भाग अंधकारमय होता है। अन्तिम 7 दिनों (चतुर्थ भाग) में चन्द्रमा पूर्णतः सूर्य और पृथ्वी के बीच पहुँच जाता है व पूर्ण अन्धकारमय हो जाता है। इसे अमावस्या कहते हैं।

व्यक्त भावनाओं एवं आस्थाओं के पीछे व्यापक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। इसी भारतीय वैज्ञानिक संस्कृति का एक उदाहरण है भारत में विभिन्न कार्यो को सम्पादित करने के लिये पंचाग का उपयोग किया जाता है। भारतीय ऋषि–मुनियों एवं शास्त्र वेत्ताओं ने यह माना कि जल, जमीन, वायुमण्डल तथा अग्नि तत्व तथा नक्षत्र मनुष्य जीवन तथा इससे सम्बधित क्रियाओं को प्रभावित करता है जिनको सही रूप से परिभाषित कर मानव जीवन को बेहतर बनाया जा सकता है। भारतीय पंचांग तिथिवार श्रेष्ठ, शुभ, प्रिय, अशुभ, आदि सम्भावित खगोलीय एवं सृष्टिगत प्रभावों का मानव जीवन में लागू करने की सिफारिशें एवं गहरी जीवन दृष्टि का संकलन है। आधुनिक उपकरणों एवं तकनीकों के विकास के साथ आज का विज्ञान भारतीय पंचांग या केलेण्डर का आंकलन कर इस ज्ञान की वैज्ञानिक अवधारणा को पुनर्स्थापित कर रहा है।

इसी अनुसार भारत में कृषि के विभिन्न कार्यो को सम्पन्न करने के लिये नक्षत्र एवं वायुमण्डलीय प्रभावों के शुभ तथा अशुभ तिथि, वार, घड़ी एवं अनुभवजन्य प्रथाओं का उपयोग किया जाता है। इस केलेण्डर या पंचांग का उपयोग प्रकृति को लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों का सार्वभौमिक लाभ लेकर कृषि को अधिक कल्याणकारी एवं पोषक बनाया जा सकता है। विश्व आधुनिक कृषि वैज्ञानिकों ने कृषि पंचांग का महत्व प्रतिपादित किया है।

एक बार शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की गति करने में चन्द्रमा को 29.5 दिन का समय लगता है। जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

### कृषि कार्य में महत्व

1. पूर्णिमा के समय चन्द्र का सर्वाधिक आकर्षण जल तत्व पर होता है। पृथ्वी और पौधों के अन्दर का जल चन्द्र की इस अवस्था में ऊपर की ओर गतिमान होता है और उच्चतम स्तर पर होता है। चन्द्रमा के इस प्रभाव से वातावरण में आर्द्रता होती है। अतः यदि पूर्णिमा के 48 घण्टे पूर्व बीजों की बुआई की जाये तो अंकुरण में वृद्धि होती है तथा पौधे निरोगी रहते हैं।
2. पूर्णिमा के समय अधिक आर्द्रता होने के कारण फफूंद तथा अन्य सूक्ष्म जीवाणुओं का प्रकोप अधिक होता है अतः फसल की कटाई इस समय नही करनी चाहिये।
3. अमावस्या के समय नमी कम होती है इसलिये ऐसे समय कटाई की जाये तो फसलोपरान्त होने वाली हानि कम होती है। बीज व दाने स्वस्थ व स्वादिष्ट होते हैं।

### चन्द्र उत्तरायण एवं दक्षिणायन पक्ष

चन्द्रमा 27.3 दिन में एक बार उत्तरायाण एवं दक्षिणायन की गति पूर्ण करता है। यह अवस्था चन्द्रमा के शुक्ल व कृष्ण पक्ष से भिन्न होती है।

### चन्द्र उत्तरायण पक्ष का कृषि कार्य में महत्व

1. चन्द्र उत्तरायण की अवस्था में पृथ्वी की ऊपरी सतह पर क्रियाशीलता में बढ़ोतरी होती है। जल तत्व पौधों में ऊपर की ओर गति करता है जिससे फसल के कायिक भाग पत्ती, तना, फल एवं फूल में वृद्धि होती है।
2. इस अवस्था में पत्तीदार फसलो की कटाई, फलों की तुड़ाई, कलम लगाना तथा चारे की कटाई करना उत्तम रहता है।
3. बीजों की बुआई इस अवस्था में करने से अंकुरण अच्छा होता है तथा रोग की सम्भावना कम रहती है।

### चन्द्र दक्षिणायन पक्ष का कृषि कार्य में महत्व

1. चन्द्र दक्षिणायन की अवस्था में ब्रह्माण्डीय शक्तियों का प्रभाव मृदा की सतह से नीचे के भाग पर संकेन्द्रित होता है जिससे भूमि क्रिया शीलता में वृद्धि होती है। अतः इस अवस्था में कन्द फसलों जैसे अश्वगन्धा, सफेद मूसली आदि की गुणवक्ता एवं उत्पादन में वृद्धि होती है।
2. सींग की खाद बनाना, निकालना, खेत में ड़ालना, कम्पोस्ट बनाना व खेत में मिलाना, जुताई करना, निराई – गुड़ाई करना आदि कार्यो के लिये यह समय सर्वोतम है। हरी खाद बनाना, पलटना व सिंचाई के लिये भी यह उपयुक्त समय है।

### पृथ्वी से चन्द्रमा की अति निकटता या अति दूरी

चन्द्रमा अपनी कक्षा में पृथ्वी के चारों ओर अण्डाकार कक्ष में घूमता है। अतः चन्द्र लगभग 7 दिन के अन्तराल से पृथ्वी के अति पास या अति दूर होता है। जब चन्द्रमा पृथ्वी से अति दूर होता है तो इसे (अपभू) कहते हैं। जब चन्द्रमा पृथ्वी के अति पास होता है तो इसे (उपभू) कहते हैं। इस समय बोये गये बीजों से कमजोर पौधे बनते हैं। इस दोनों ही स्थितियों में कोई भी कृषि कार्य नही करना चाहिये।

## 2.6 कीट एवं रोगों का जैविक नियन्त्रण–सामान्य जानकारी (Biological Control of Insect and Diseases - General Introduction)

फसलों की कीटों एवं रोगों से सुरक्षा करना सफल फसल प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण अंग है। कीटों एवं रोगों द्वारा फसलों की उपज में 10 से 100 प्रतिशत तक हानि हो सकती है। ऐसा आँकलन किया गया है कि उपज में होने वाले कुल नुकसान में कीटों से 26 प्रतिशत तथा रोगों से 20 प्रतिशत हानि होती है। अतः विभिन्न रासायनिक तथा अरासायनिक विधियों से कीट एवं रोगों का प्रबन्धन करना आवश्यक है। लोकसभा की स्टेण्डिंग कमेटी ऑन एग्रीकल्चर (2015–16) के अनुसार हमारे देश में वर्ष 2013–14 में पेस्टीसाइड की कुल खपत 57353 मेट्रिक टन थी। जबकि राजस्थान में इनकी मात्रा 2736 मेट्रिक टन थी। हमारे देश में पेस्टीसाइड की अधिकतर मात्रा को विदेशों से आयात किया जाता है। वर्ष 2013–14 में 512209 लाख रूपये का 77376 मेट्रिक टन (तकनीकी श्रेणी) पेस्टीसाइड का आयात किया गया। हमारे देश की कृषि में पेस्टीसाइड का उपयोग बढ़ रहा है।

रसायन आधारित फसल संरक्षण पर अधिक केंद्रित करने पर फसल सुरक्षा तो होती है लेकिन कई दीर्घकालीन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे – खाद्यानों में हानिकारक रसायनों के अवशेष, लाभदायक कीटों व सूक्ष्म जीवों का नष्ट होना, पर्यावरण प्रदूषण, आदि। खाद्य एवं कृषि उत्पादों में पेस्टीसाइड अवशेष का मिलना एवं पेस्टीसाइड के असंतुलित उपयोग से आमजन में उत्कृष्ट कृषि क्रियाओं (EAP) द्वारा उत्पादित कृषि उत्पादों की तरफ रूझान बढ़ रहा है। साथ ही पर्यावरण के संरक्षण तथा खेती में लागत कम करने हेतु अरासायनिक विधियों से कीटों एवं रोगों का नियन्त्रण पर जोर दिया जा रहा है।

प्रकृति में जितने हानिकारक कीटों का उद्भव होता है, लाभकारी कीट एवं मित्र जीव भी उससे कई गुना ज्यादा मौजूद है। आवश्यकता है उनको पहचानने, संग्रहण करने व उपयोग करने की। वेदों में भी कहा गया है जीव जीवस्य भोजनम् – प्राकृतिक मित्र जीवों एवं वानस्पतिक कीटनाशकों के द्वारा कीट एवं व्याधि नियन्त्रण कम खर्चीला, प्रभावी व स्थायी उपाय है तथा पर्यावरण पर भी इनका विपरीत प्रभाव नही पड़ता है। कीट एवं व्याधि नियन्त्रण की जानकारी काफी प्राचीन है। हजारों साल पूर्व से ही चीन में नींबू कुल के पौधों के हानिकारक कीटों के विरूद्ध चीटियों का प्रयोग किया जाता था, जबकि यमन में चीटियों का प्रयोग खजूर के हानिकारक कीटों के विरूद्ध होता था। जैविक खेती में संश्लेषित रसायनों का प्रयोग वर्जित होता है अतः जैविक खेती में प्राकृतिक मित्र जीवों व वानस्पतिक कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है।

जैविक खेती में फसलों में कीट एवं व्याधि नियन्त्रण हेतु निम्न विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. **सस्य नियन्त्रण** – स्वच्छता, भू–परिष्करण, उचित फसल चक्र, बुआई के समय में परिर्वतन, उचित पोषक, तत्व प्रबन्धन, प्रपंच फसलें, मिश्रित फसलें, कटाई–छँटाई, आदि।
2. यान्त्रिक नियन्त्रण –हाथ से पकड़कर नष्ट करना, पौधों को झाड़कर, खाई खोदना, कीट प्रपंच अवरोध लगाना, पौधो के चारों ओर जाली लगाना आदि।
3. जैविक नियन्त्रण –परजीव्याभ, परभक्षी कीट, रोगाणु, सूत्रकृमि, विशाणु आदि।
4. वानस्पतिक कीटनाशकों का प्रयोग –नीम, करंज, लहसुन आदि।

### कीट व्याधि नियन्त्रण के जैविक उपाय

हानिकारक जीवों की रोकथाम व उनके प्रभाव को कम करने या उनको नष्ट करने के लिये इनके प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग करना ही जैविक जीवनाशक या जैविक नियन्त्रण कहलाता है। कीट एवं व्याधियों के जैविक नियन्त्रण के घटक निम्न हैं –

1. **रीढ़धारी शिकारी जीव** – कुछ रीढ़धारी जीव हानिकारक कीटों को पकड़कर भक्षण करते हैं जिससे उनकी संख्या सीमित रहती है। इन जीवों में मछलियाँ, सर्प, मेढ़क, पक्षी, आदि मुख्य हैं। परन्तु इनका जैविक नियन्त्रण के रूप में प्रयोग कम ही हुआ है। उदाहरण – चने के खेत मे फली छेदक के नियन्त्रण हेतु मांसाहारी पक्षियों का उपयोग किया जाता है। चिड़ियो को आकर्षित करने के लिए एक हेक्टेयर क्षेत्र में 200 लकड़ी की खपच्चियाँ 40–50 सेमी. ऊँचाई पर लगायें। या T आकार के अड्डे लगायें।
2. **परभक्षी कीट** – प्रकृति में कई प्रकार के परभक्षी मित्र कीट हानिकारक कीटों को खाकर अपना जीवनयापन करते हैं। इनमें मुख्य परभक्षी कीट निम्न हैं –
   - (i) क्राइसोपिड्स – क्राइसोपिड्स एक परभक्षी कीट है जो मुलायम शरीर वाले कीट चैपा, थ्रिप्स, जैसिड्स, फुदका, मिलीबग, सफेद मक्खी एवं लेपिडोप्टेरा गण के कीटों के अण्डों व सूंडियों को खाते हैं। भारत में इनकी 21 जातियाँ पाई जाती हैं, जिसमें 4 मुख्य हैं। फसलों में 50,000 सूंडियाँ प्रति हेक्टेयर एवं फलदार वृक्षों में 10–20 सूंडियाँ प्रति पेड़ छोड़ते हैं।
   - (ii) कोक्सीनेला स्पीशीज – यह परभक्षी कीट सभी प्रकार के माहू/ चैपा का भक्षण करते हैं। ये कीट खेत में छोड़ने के एक सप्ताह के भीतर माहू को समाप्त कर देते हैं। इस कीट के वयस्क एवं शिशु दोनों ही रस चूसक कोमल नाशीजीवों का भक्षण कर उनकी प्राकृतिक रोकथाम करते हैं।

उदाहरणतः कोक्सीनेला सप्टमपंकटेटा, मिनोकाईल्स, सेक्समेकूलेट्स, क्रिप्टोलियम, ब्रूम्स, आदि

रेडुवीड् बग्स– राईनोकोरस्, कोरेनस् आदि ये परभक्षी बग विभिन्न सुण्डियों का भक्षण कर उनकी प्राकृतिक रोकथाम करती हैं।

3. **परजीवी कीट** – जैविक नियन्त्रण में परजीवी कीटों का महत्वपूर्ण स्थान है।

हानिकारक कीटों की विभिन्न अवस्थायें जैसे

अण्डे, सुण्डी, शंकू एवं प्रौढ़ अवस्था अनेक प्रकार के परजीवों के माध्यम से प्राकृतिक रूप से नियन्त्रित होती हैं।

अण्ड परजीव्याभ ट्राईकोग्रामा, टिलोनोमस आदि

अण्ड–सुण्डी परजीव्याभ चिलोनस्

सुण्डी परजीव्याभ कोटेसिया, ब्रेकोन, किलियोनिस, कैम्पोलेटिस, आईसोटिमा, स्टेनोब्रेकन आदि

शंकू परजीव्याभ – प्लेटीगैस्टर,

रस चूसक कीटों के परजीव्याभ–इपीरिकेनिया, एनकार्सिया, एल्पोट्रोपा आदि

(i) ट्राइकोग्रामा – यह एक अण्ड परजीवी है जो हानिकारक कीटों विशष तौर से लेपीडोप्टेरा गण के कीटों के अन्दर अपने अण्डे देता है। ट्राइकोग्रामा के एक कार्ड पर लगभग 16000–20000 पोश्य कीटों के परजीवी अण्डे होते हैं। यह कीट आकार मे बहुत छोटे होते हैं जो केवल 5–7 मीटर तक उड़ सकते हैं। फसलों में ट्राइकोग्रामा का उपयोग गन्ने में जड़, तना एवं शीर्ष भेधक, कपास मे बॉलवार्म, बैंगन में फल छेदक तथा धान एवं टमाटर में तना छेदक के नियन्त्रण के लिए किया जाता है। भारत में पेस्टीसाइड का उपयोग 600 ग्राम प्रति हैक्टेयर है। यह मात्रा अन्य विकसित देशों की अपेक्षा कम है लेकिन बढ़ती लागत 50,000–1,50,000 अण्डे (2.5–7.5 ट्राइकोकार्ड) प्रति हेक्टेयर 2 से 6 बार प्रयोग करते हैं।

(ii) इपीरिकेनिया – इस परजीवी का उपयोग गन्ना में पायरिला के प्रभावी नियन्त्रण हेतु किया जाता है।

4. **फफूंद** – फफूंद जैविक जीवनाशी का एक बड़ा समूह है। फफूंद की अनेक जातियाँ कीटों को नष्ट करने में सक्षम हैं। फाइकोमाइसीटिज, एस्कोमाइसीटिज, बेसिडियोमाइसीटिज वर्ग के विभिन्न फफूंद जीवनाशी के रूप में प्रयोग किये जा सकते है। प्रतिरोधी फफूंद का उपयोग फफूंदजनित रोगों के निवारण में किया जाता है।

   **ट्राइकोडर्मा** – यह एक मित्र फफूंद है जो मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार की हानिकारक फफूंदों के प्रबन्धन में महत्वपूर्ण योगदान देती है। जैविक खेती में इस समूह की फंफूदों का महत्व और भी बढ़ जाता है। ट्राइकोडर्मा को बीज, जड़ एवं भूमि उपचार में अनुमोदित मात्रा में प्रयोग किया जाता है। बीजोपचार हेतु 6–8 ग्राम ट्राईकोडर्मा प्रति किग्रा. बीज की दर से प्रयोग करते हैं। इसका उपयोग चने में उखटा, मूंगफली में कॉलर रोट, सोयाबीन में जड़ सड़न आदि के नियन्त्रण हेतु किया जाता है।

5. **जीवाणु** – कीटों और फसल रोगों के नियन्त्रण में जीवाणुओं का उपयोग सफलतापूर्वक व्यापारिक रूप से हो रहा है। बैसीलस थूरिन्जेन्सिस (बी.टी.) एक प्रचलित कीटनाशी है जो लेपीडोप्टेरा, डिप्टेरा, कोलिओप्टेरा गण के कीटो का प्रभावी नियन्त्रण करता है। विभिन्न फसलों में इन गणों के कीटों के नियन्त्रण के लिए फसल की उपयुक्त अवस्था पर बी.टी. का 1.0 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जाता है।

6. **विषाणु** – अभी तक 7 कुल के विषाणु कीटों को मारने में सक्षम पाये गये हैं। इनमें से बेकुलो विरीडी कुल के विषाणुओं पर अधिक कार्य हुआ है। इस कुल मे एन.पी.वी. (न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस) व जी.वी. (ग्रेनुलोसिस वायरस) प्रमुख हैं। उदाहरण – चने मे फली छेदक के नियन्त्रण हेतु हेलिकोवर्पा एन.पी.वी. 250 एल.ई. का 750 मिली. प्रति हेक्टेयर छिड़काव किया जाता है।

7. **सूत्रकृमि** – सूत्रकृमि कीटों पर बाह्य एवं आन्तरिक रूप से परजीवी होते हैं। फसलों के हानिकारक कीटों को मारने में स्टेनरनिमेटिडी कुल व हेटरोरेवेटिडी के सूत्रकृमि मुख्य हैं। जिनका प्रयोग विभिन्न सुण्डियों की रोकथाम हेतु किया जाता है। राइटाइडीस, पैनग्रोलेम्स और नेयोएप्लेवसना जाति के सूत्रकृमि का प्रयोग मक्का में तना छेदक, चने में फली छेदक तथा धान में तना छेदक कीटों की रोकथाम हेतु किया जाता है।

8. **प्रोटोजोआ** – विभिन्न प्रकार के प्रोटोजोआ कीटों में संक्रमण फैलाते हैं। नोजेमा जाति के प्रोटोजोआ को टिड्डे के नियन्त्रण में सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है।

### वानस्पतिक उत्पादों से कीट–व्याधि नियन्त्रण

भारत वर्ष में विभिन्न वनस्पतियों का उपयोग औषधियों और अन्न भण्डारण में तथा फल व फूल के रख रखाव हेतु प्राचीन काल से ही हो रहा है। वनस्पति के किसी भाग जैसे जड़, तना, पत्तियाँ, फल, फूल, बीज, आदि का प्रयोग कर कीट व व्याधि की रोकथाम की जाती है। पौधे अपनी द्वितीयक उपापचय क्रियाओं में टरपेनोइड, एल्केलॉइड, फ्लेवेनोइड, अमीनों अम्ल आदि रसायन उत्पन्न करते हैं जो कि कीटों में प्रतिकर्षण व खाने में अरूचि पैदा करते है। यही रसायन पौधों को कीट एवं व्याधियों से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

हमारे देश में कई पौधे जैसे नीम, करंज, तम्बाकू, सीताफल, क्राइसेंथेमम, लहसुन आदि पाये जाते है जिनके विभिन्न उत्पादों से फसलों में कीट–व्याधियों का नियन्त्रण आसानी से किया जा सकता है।

1. **नीम** – नीम व नीम उत्पादों का फसलों में कीट व व्याधियों के नियन्त्रण में उपयोग नया नहीं है। हमारे देश में नीम की पत्तियों का प्रयोग अनाज भण्डारण में अनादि काल से किया जा रहा है। हालांकि 1959 में जर्मनी के कीट वैज्ञानिक ने बताया कि सूडान में नीम एक मात्र ऐसा वृक्ष पाया गया जो असंख्य टिड्डियों के आक्रमण भी से बचा रहा। नीम के सभी भाग पत्तियाँ, तना, फूल, फल, छाल तथा बीज में कीटनाशक गुण पाये जाते हैं।

अनुसंधानों से यह निष्कर्श निकाला जा चुका है कि नीम के उत्पाद कीटों की 200 से अधिक प्रजातियों की विभिन्न अवस्थाओं को प्रभावित करते हैं। नीम की खली का उपयोग

करने से मृदा की उर्वरा शक्ति तो बढ़ती ही है साथ में कई भूमिगत कीटों जैसे दीमक आदि से फसल की सुरक्षा होती है। नीम की पत्ती या निम्बोली के 10 प्रतिशत घोल का छिड़काव करने से कई कीटों की रोकथाम होती है। जैसे– मक्का व ज्वार में तना छेदक, चने में फली छेदक आदि।

विश्वभर में नीम का प्रयोग पादप रोग नियन्त्रण में भी किया जाने लगा है। नीम के तेल का उपयोग चने में लगने वाले उखटा रोग जनक जैसे राइजोक्टोनिया सोलेनाई व स्केलेरोशियम रोल्फसाई की रोकथाम के लिए सफलतापूर्वक किया जा चुका है। निम्बोली का प्रयोग चूर्णिल आसिता जैसे रोग के नियन्त्रण के लिये सफलतापूर्वक किया जा चुका है।

नीम के उत्पादों में 100 से ज्यादा प्रभावकारी रासायनिक तत्व पाये जाते हैं। इन तत्वों में लिमोनोइड तत्वों का समूह (ट्राइटरपीनोइट्स) मुख्य है जिसमें अजाडेरोच्टिन, निम्बिन, निम्बिडिन, सेलानिन, सेलानोल, क्विरसेटिन आदि तत्व प्रमुख हैं। नीम के बीजों में अजाडेरेच्टिन मुख्य तत्व है। नीम के बीजों में लगभग 2 से 6 प्रति किलो दाना अजाडेरेच्टिन पाया जाता है। इसके कारण नीम में कड़वापन होता है। नीम की बीजों में उपलब्ध टिग्निक एसिड के कारण नीम तेल में विशेष गन्ध आती है। नीम के गुणों को देखते हुए, अमेरिका की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने वर्ष 2002 प्रकाशित रिपोर्ट में लिखा कि ''नीम'' वैश्विक समस्याओं का हल करने वाला वृक्ष है।

| क्र.सं. | नीम उत्पाद | बायोपेस्टीसाइड तैयार करने की विधि |
|---|---|---|
| 1. | नीम बीज सत (NSKE) | 50 ग्राम नीम के 3 से 8 माह पुराने बीज का पाउडर को 1 लीटर पानी में रातभर भिगोकर घोल को छानकर छिड़काव करें। |
| 2. | नीम पत्ती सत (NLE) | 1 किलोग्राम नीम की हरी पत्तियों को 5 लीटर पानी में रातभर भिगोने के बाद चटनी/पेस्ट बनाकर छान लें तथा छिड़काव करें। |
| 3. | नीम तेल | 20 से 30 मिलीलीटर नीम का तेल प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। |
| 4. | नीम खली सत (Neem Cake Extract) | 100 ग्राम नीम की खली को एक लीटर पानी में मिलाकर रातभर भिगोने के बाद छान कर निकाले घोल की 1 मिलीलीटर मात्रा को एक लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। |

**(Neem, a Tree for Solving Global Problems)**

1. **क्राइसेंथेमम** – क्राइसेंथेमम के सूखे फूल आदिकाल से कीटनाशक के रूप में उपयोग मे लाये जा रहे हैं। भारत में कीटनाशी के रूप में इसका उपयोग सब्जी व फलों तक ही सीमित है।
2. **तम्बाकू** – तम्बाकू में पाया जाना वाला निकोटिन कीटनाशक के रूप में कार्य करता है तम्बाकू की पत्तियों का रस सरसों में माहू, कपास की सफेद मक्खी, थ्रिप्स व बालवर्म को प्रभावी रूप से नियन्त्रित करता है। धान में भूरा–हरा फुदका व चने की इल्ली के नियन्त्रण हेतु तम्बाकू की पत्तियों के घोल का छिड़काव प्रभावी पाया गया है।
3. **करंज** – करंज एक अति प्राचीन भारतीय वृक्ष है। इसकी खली का उपयोग भूमिगत कीटों के नियन्त्रण हेतु किया जाता है। करंज के तेल व पत्तियों के रस से धान के कई कीट नियन्त्रित किये जा सकते हैं।
4. **सीताफल** – सीताफल के तने व पत्तियों में कई तरह के एल्केलोइड पाये जाते हैं। इसका रस दीमक व अन्य कीटों को प्रभावी रूप से नियन्त्रित करता है। दाल वाली फसलों के बीजों को सीताफल उत्पाद से उपचारित कर भण्डारित करने पर अधिक समय तक कीटों से सुरक्षा मिलती है।
5. **लहसुन** – लहसुन एक औषधीय फसल है। इसमें कीटनाशी व जीवाणुनाशी गुण पाये जाते हैं। लहसुन के 2 प्रतिशत घोल के छिड़काव से फसलों में चूसक कीटों का नियन्त्रण किया जा सकता है। इसी प्रकार लहसुन के घोल के छिड़काव से जीवाणु रोगों का भी नियन्त्रण होता है।

## कीट एवं व्याधियों का भौतिक नियन्त्रण

1. **प्रकाश प्रपंच का उपयोग** – सफेद (दूधिया) प्रकाश की ओर कीड़े आकर्षित होते हैं। इसलिए खेत में मर्करी लाईट अथवा बल्ब लगा दिया जाता है, जो फसल ऊँचाई से सिर्फ आधा फीट की ऊँचाई पर हो तथा उसके पास पानी का ड्रम अथवा मटका रख दिया जाता है। रात में कीड़े प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं एवं पानी में गिर जाते हैं। यह प्रकाश रात्रि को सिर्फ 7 बजे से 10 बजे तक ही करना चाहिये। इसके बाद मित्र कीट उड़ते है। अतः प्रकाश रहने पर उनके मरने की सम्भावना रहती है।
2. **फैरोमेन ट्रेप का उपयोग** – फैरोमेन ट्रेप कार्बनिक रसायन (गंध) प्रपंच है। इसमें उपलब्ध रसायन नर पतंगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये गंध वातावरण में

छोड़ता है। गंध से आकर्षित नर पंतगे ट्रेप में आकर फंस जाते हैं। नर पतंगो के नियन्त्रण के लिए प्रति हेक्टेयर 5–7 ट्रेप लगाना आवश्यक होता है। ट्रेप का ल्यूर 15 दिन में बदलते रहना चाहिए ताकि पतंगे नियमित रूप से आकर्षित होते रहें।

### कीट एवं व्याधि नियन्त्रण में गौ–मूत्र का उपयोग

गौ–मूत्र को वेदों में अमृत तुल्य बताया गया है यह माना जाता है कि गौ–मूत्र जितना पुराना उतना उपयोगी होता है। गौ–मूत्र का उपयोग शरीर एवं दिमाग को परिष्कृत करने, रोग निवारक, बायोपेस्टीसाइड पौध वृद्धि कारक तथा मृदा गुणवत्ता पोषक के रूप में किया जाता है। गौ–मूत्र के विभिन्न गुणों पर अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर कई पेटेन्ट जारी किए जा चुके हैं।

प्राचीन काल से ही गौ–मूत्र को कृषि तथा मानवजीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गौ–मूत्र में आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटाश, सोडियम, कॉपर, कार्बोनिक अम्ल व लेक्टोज पाया जाता है। गौ मूत्र से बनी दवाओं का प्रयोग मनुष्यों की विभिन्न बीमारियों के इलाज में भी किया जाता है। गौ–मूत्र को संक्रमण दूर करने वाला माना गया है। अनुसंधान द्वारा यह पाया गया है कि गौ–मूत्र में कीटनाशी का गुण होता है जिससे पौधे स्वस्थ व निरोगी रहते हैं।

गौ–मूत्र में लगभग 95 प्रतिशत पानी, 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 2.5 पोषक तत्व, लवण, हारमोन्स तथा एन्जाइम पाये जाते हैं। इसमें कॉपर, चांदी तथा सोने के कणों के अलावा एस्ट्रोजन, कोर्टिकोस्टेरॉइड तथा कीटोस्टेरॉइड भी पाये जाते है। गौ–मूत्र के 5 से 15 प्रतिशत सान्द्रता के घोल का सीधा छिड़काव तथा अन्य पौधों के सत जैसे– तुलसी, आम, धतूरा, आदि के साथ मिलाकर इसका प्रयोग फसलों में कवकनाशी, जीवाणुनाशी तथा कीटनाशी के रूप में किया जाता है।

## 2.7 टिकाऊ खेती की सामान्य जानकारी

### परिचय

राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दीर्घावधि उर्वरक अनुसंधान व प्रयोगों के आधार पर 1980 के दशक से विभिन्न कृषि विशेषज्ञों ने किसानों द्वारा लगातार अधिक मात्रा में उर्वरक, पानी व एक ही प्रकार की फसल चक्र व उननत किस्म लेने से भूमि की उर्वरता में गिरावट, उपज तथा वातावरण पर दुष्प्रभाव के संकेत दिए थे। इसी के समानान्तर 1972 में स्टॉकहोम (स्वीडन) मे हुए प्रथम विश्व पर्यावरण सम्मेलन के कारण वातावरण व पारिस्थितिकीय टिकाऊपन पर अन्तर्राष्ट्रीय सोच जागने लगी। यहाँ पर सभी देशों से यह अपेक्षा जताई गई कि कृषि या पर्यावरण के क्षेत्र में ऐसा कोई अचानक परिवर्तन न किया जाए जिससे पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़े। हमारे देश में गेहूँ व चावल में ज्यादा उर्वरक, पानी व अच्छे बीज के उपयोग में गिरावट होने लगी तथा खाद्यान्नों की आंशिक घटक उत्पादकता (Partial Factor Productivity) में गिरावट होने लगी। सेम, लवणयता, खरपतवारों व पानी एवं जमीन के प्रदूषण की समस्या बढ़ने लगी। इसके साथ ही 1992 में रियो डी जनेरियो (ब्राजील) में हुए दूसरे पृथ्वी सम्मेलन में टिकाऊपन की समस्या पर अन्तर्राष्ट्रीय सोच प्रकट होने पर सभी देशों ने उन सभी कृषि क्रियाओं को कृषि उत्पादन तकनीकों में समावेश करने पर विशेष ध्यान देना शुरू कर दिया जो फसल उत्पादन, भूमि की उर्वरता व वातावरण की सुरक्षा के साथ–साथ किसानों के लिए लम्बे समय तक फायदेमंद भी रहे तथा कृषि उत्पादन में टिकाऊपन कायम रहे।

टिकाऊ खेती

टिकाऊपन (Sustainability) का शब्दिक अर्थ है ''किसी घटक की उत्पादन क्षमता को लंबे समय तक निरन्तर बनाए रखना''।

आमतौर पर इस सिद्वान्त को अगर कृषि से जोड़ दिया जाए तो इसका अर्थ है कि ऐसी कृषि पद्धति जो भूमि की उत्पादकता व लाभप्रदता में कोई विशेष परिवर्तन किए बगैर उत्पादन को बरकरार रखें। विश्व पर्यावरण और विकास आयोग और उसकी आर्थिक विकास एवं पर्यावरण सलाहकार समिति की रिपोर्टों में इस बात का बल दिया गया है कि कृषि एवं आर्थिक विकास तथा इसमें प्रयुक्त होने वाली नई तकनीकों को पर्यावरण सुरक्षा से जोड़ना होगा। इस परिप्रेक्ष्य में टिकाऊ खेती कृषि की ऐसी पद्धति है जिसमें पर्यावरण को बिना क्षति पहुँचाए खेती की पैदावार बढ़ती रहे तथा यह स्थिति लम्बे समय तक कायम रहे। ऐसी प्रणाली में उत्पादकता का मापदण्ड निम्नलिखित तरह से आंका गया है:–

$$\text{उत्पादकता} = \frac{\text{उत्पादन का मान} + \text{प्राकृतिक धरोहरों पर प्रभाव}}{\text{निवेश का मान}}$$

### परिभाषा

टिकाऊ खेती एक कृषि पद्धति है जिसमें कृषि संसाधनों का इस प्रकार सफल प्रबंधन किया जाता है जिससे मानव की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, साथ ही पर्यावरण में सुधार हो या गिरावट न आए और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा हो सके।

टिकाऊपन के मानक

टिकाऊ खेती के निर्धारण के लिए निम्नलिखित तीन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का समावेश होना अति आवश्यक है:–

1. **दक्षता** – टिकाऊ खेती के लिए यह आवश्यक है कि उपलब्ध संसाधनों का दक्षता से उपयोग हो। प्रति इकाई संसाधन के उपयोग पर अधिक से अधिक उत्पादन मिले। दक्षता इंगित करती है कि प्रक्षेत्र पर उपलब्ध सभी संसाधनों का बुद्धिमता व संतुलित रूप से इष्टतम उपयोग हो।

2. **पर्यावरण** – कृषि उत्पादन को बढ़ाने वाली पद्धतियाँ या इसमें प्रयुक्त होने वाले संसाधनों का इस प्रकार उपयोग करें जिससे कि प्राकृतिक संसाधनों का कम से कम ह्रास हो एवं पर्यावरण का पूरा संरक्षण हो अर्थात् मुख्य रूप से मृदा, जल, जलवायु, उर्जा तथा पोषक तत्वों की प्रभावकारी एवं गुणकारी स्थिति बनी रहे।

3. **समय** – टिकाऊपन की कोई समय सीमा नहीं है। यह अनन्त है। दीर्घावधि तक कृषि की नई तकनीकों का प्रभावकारी व गुणकारी स्वभाव कायम रखने से टिकाऊपन बना रहता है। आधुनिक खेती के तौर–तरीके लाभकारी जरूर हैं लेकिन थोड़े समय के लिए। दीर्घावधि के लिए खेती को लाभकारी, टिकाऊ खेती के सिद्वान्तों व प्रणालियों को अपनाकर ही बनाया जा सकता है।

## टिकाऊ खेती के सिद्धान्त

टिकाऊ खेती ऐसी कृषि क्रियाओं, तकनीकों व विधियों का समावेश है जो कृषि की दक्षता, पर्यावरण संरक्षण एवं मानवीय आवश्यकता के साथ दीर्घ काल तक सामंजस्य बनाए रखती हैं। टिकाऊ खेती के मुख्य सिद्धान्त निम्न हैं :–

1. सभी कृषि कार्यकलापों को क्रियान्वित करने के समय इस बात से सजग रहना चाहिए कि कहीं कोई विधि प्राकृतिक संतुलन के किसी घटक पर विपरीत या प्रतिस्पर्धातमक प्रभाव नहीं डाल रही है यह कृषि–पारिस्थितिकी के घटकों में समांजस्यकारी होनी चाहिए।
2. परम्परागत व देशज कृषि तकनीकों को परिष्कृत करने के बजाए नई तकनीकों के साथ इसका सामंजस्य प्रेरित करना।
3. सभी उत्पादक एवं लाभप्रद कृषि क्रियाओं के समावेश पर जोर देना।
4. प्रकृतिक संसाधनो का संरक्षण करने वाले सभी पुरानी व नई तकनीकों को कृषि कार्यकलापों में अधिकाधिक सम्मिलित करना।
5. स्वास्थ्य व सुरक्षा को पूरा ध्यान देने वाली होनी चाहिए।
6. कम लागत वाली कृषि तकनीकों व नवीनीकृत संसाधनों पर अधिक बल देना।
7. दीर्घकाल तक प्राकृतिक संतुलन व मानव आवश्यकता का ध्यान रखें।
8. यह एक निरन्तर व गतिमान पद्वति है अतः नई तकनीकों व ज्ञान के आधार पर समय व स्थान के अनुसार परिवर्तनशील है।

**टिकाऊ खेती के घटक :** खेती को टिकाऊ बनाने के लिए निम्न घटकों का समावेश करना आवश्यक है।

1. **फसल विविधिकरण** – इसमें फसल चक्र, मिश्रित फसल एवं अन्तर्शस्य खेती एवं फसल पद्धति के सिद्धान्तों के अनुसार फसलों का चुनाव एवं उत्पादन किया जाता है।

2. **आनुवांशिक विविधता** – कृषि जलवायु एवं मौसमजन्य नुकसान को कम करने तथा एकल जीन बहुलता के खतरे को कम करने हेतु अलग–अलग आनुवांशिकी के पेड़–पौधों एवं जीवों का चुनाव कर उत्पादन करने पर जोर दिया जाता है।

3. **समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन** – विभिन्न जैविक एवं अजैविक स्रोतों तथा प्रबंधन कारकों के उचित समन्वय द्वारा बेहतर एवं सम्यक तरीके से फसलों की पोषण आवश्यकता पूरी की जाती है। साथ ही मृदा उत्पादकता भी बनाए रखी जाती है।

4. **समन्वित नाशीजीव प्रबंधन** – भौतिक एवं शस्य क्रियाओं, जैविक, पारिस्थितिकीय, रासायनिक एवं वर्जन पद्धतियों का समावेश कर पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाले बिना कीटों एवं रोगों एवं हानिकारक जीवों का नियंत्रण एवं प्रबंधन किया जाता है।

5. **समन्वित जल प्रबंधन** – जल संग्रहण एवं संरक्षण, जल वितरण, जल पुर्नभरण तथा सिंचाई की अधिक प्रभावी विधियों एवं जलसंग्रहण क्षेत्र प्रबंधन द्वारा जल के अधिकतम सदुपयोग एवं पुनर्भरण के सिद्धान्तों को अपनाया जाता है।

6. **उर्जा प्रबंधन** – नवीनीकरण उर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का टिकाऊ खेती में समावेश करने पर जोर दिया जाता है। बायोगैस, बायोमास, सौर एवं वायुजनित ऊर्जा संसाधनों का कृषि प्रबंधन में समावेश किया जाता है।

7. **उन्नत तकनीकों का ज्ञान** – कृषि की उन्नत तकनीकों एवं उत्पादों के सामाजिक, पर्यावरणीय एवं आर्थिक प्रभावों के बारे में नवीनतम जानकारी के सतत् अर्जन से कृषि उत्पादन में टिकाऊपन लाया जा सकता है।

8. **सूचना प्रबंधन**– खेती से संबंधित नई तकनीकों, बाजार, योजनाओं, विषय विशेषज्ञ तथा कन्सलटेन्सी संबंधी सेवाओं के बेहतर उपयोग के लिए क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सूचनाओं की जानकारी आवश्यक है इसके लिए ई–लर्निंग, ई–मार्केट, रिमोट सेन्सिंग, इन्टरनेट, मोबाईल एप, जीपीएस आदि तकनीकों का इस्तेमाल कर खेती के प्रबंधन को दक्ष बनाया जा सकता है।

## महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. आधुनिक खेती के प्रतिकूल प्रभावों के कारण टिकाऊ खेती की अवधारणा का जन्म हुआ।
2. आज विश्व में जैविक खेती, बायोडायनेमिक खेती, अग्निहोत्र, ऋषि खेती, परमाकल्चर, इत्यादि का प्रचलन

बढ़ रहा है। इन सभी का उद्‌देश्य एक ही है– कृषि उपज में टिकाऊपन के साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण।

3. जैविक खेती मुख्यतया फसल–चक्र, फसल अवशेष, जीवांश खाद, दलहनी फसल, हरी खाद, खनिज पदार्थों एवं जैविक कीट व व्याधि नियंत्रण पर निर्भर करती है।
4. जैविक खेती में फार्म को एक जीवित संगठन के रूप में माना जाता है।
5. जैविक उत्पाद के व्यवसायीकरण हेतु जैविक उत्पाद प्रमाणीकरण होना आवश्यक है।
6. जैविक खेती में फसल को पोषक तत्वों की आपूर्ति जीवांश / कार्बनिक खादों से की जाती है।
7. गोबर की खाद में 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.25 प्रतिशत फॉस्फेरस व 0.50 प्रतिशत पोटाश होता है।
8. कम्पोस्ट फार्म अवशिष्टों व शहर–कस्बों के अवशिष्टों से तैयार की जाती है।
9. इन्दौर विधि ए. होवार्ड व यशवन्त डी. वाड द्वारा विकसित की गई है।
10. नेडेप विधि महाराष्ट्र के कृषक नाडेप काका द्वारा विकसित की गई है।
11. वर्मीकम्पोस्ट बनाने हेतु एपिजिक किस्म के केंचुएँ काम में लिये जाते हैं।
12. एक प्रजनन केंचुआ 6 माह में 250 केंचुएँ पैदा कर देता है।
13. नाइट्रोजन जैव उर्वरक है– राइजोबियम, एजोटोबेक्टर, एजोस्पिरिलम, नील हरित शैवाल, एजोला आदि तथा फॉस्फोरस जैव उर्वरक पी.एस.एम. / पी.एस.बी. व माइकोराइजा हैं।
14. राइजोबियम का उपयोग दलहनी फसलों में किया जाता है।
15. नील हरित शैवाल व एजोला का उपयोग धान में किया जाता है।
16. एजोटोबेक्टर व एजोस्पिरिलम जैव उर्वरको का प्रयोग अदलहनी फसलों में किया जाता है।
17. पी.एस.एम. / पी.एस.बी. का प्रयोग सभी प्रकार की फसलों व सब्जियों में किया जाता है।
18. जैव उर्वरकों का प्रयोग बीज उपचार, मृदा उपचार पौध उपचार व कन्द उपचार के लिये किया जाता है।
19. डॉ. रूडोल्फ स्टेनर ने बॉयोडायनेमिक खेती की विचारधारा का प्रतिपादन किया।
20. बॉयोडायनेमिक खेती को जैवगतिकी कृषि भी कहते हैं।
21. कृषि पंचांग मूलतः चन्द्रमा की गति पर आधारित होता है।
22. पूर्णिमा के 48 घण्टे पूर्व बीजों की बुआई की जाये तो अंकुरण दर में वृद्धि होती है। इस दिन अधिक आर्द्रता के कारण फफूंद तथा अन्य सूक्ष्म जीवाणुओं का प्रकोप अधिक होता है।
23. अमावस्या पर फसल की कटाई करने पर फसलोपरान्त होने वाली हानि कम होती है।
24. चन्द्र उत्तरायण अवस्था में बुआई करने पर अंकुरण अच्छा होता है। इस अवस्था में पत्तीदार फसलों की कटाई, फलों की तुड़ाई, कलम लगाना तथा चारे की कटाई करना उत्तम रहता है।
25. चन्द्र दक्षिणायन अवस्था में कन्दवाली फसलों की गुणवत्ता व उत्पादन में वृद्धि होती हैं। यह अवस्था खाद बनाने व खेत में डालने तथा जुताई के लिये सर्वोत्तम है।
26. जैविक खेती में कीट एवं व्याधि नियन्त्रण हेतु सस्य नियन्त्रण, यान्त्रिक नियन्त्रण, जैविक नियन्त्रण, वानस्पतिक उत्पाद का प्रयोग, आदि उपाय काम में लिये जाते हैं।
27. फसलों में कीट व व्याधि के जैविक नियन्त्रण हेतु परजीव्याभ, परभक्षी, रोगाणु, जीवाणु, विषाणु, प्रोटोजोआ आदि का उपयोग किया जाता है
28. जैविक नियन्त्रण हेतु क्राइसोपीड्स व कोक्सीनेला प्रमुख परभक्षी कीट हैं।
29. ट्राइकोग्रामा व एपीकार्निया जैविक नियन्त्रण के प्रमुख परजीवी कीट है।
30. ट्राइकोडर्मा एक फफूंद है जो विभिन्न फसलों में बीज एवं मृदा उपचार हेतु काम में ली जाती है।
31. *बैसिलस थूरिन्जेन्सिस* (बी.टी.) एक प्रचलित जैव कीटनाशी है जो लेपीडोप्टेरा, डिप्टेरा व कोलिओप्टेरा कुल के कीटों का नियन्त्रण करती है।
32. एन.पी.वी. व जी.वी. जैविक नियन्त्रण हेतु मुख्य विषाणु है।
33. कीट–व्याधि की रोकथाम हेतु मुख्यतः नीम, करंज, क्राइसेंथेमम, लहसुन, गौ–मूत्र आदि उत्पाद काम में लिए जाते हैं।
34. टिकाऊ खेती एक कृषि पद्धति है जिसमें कृषि संसाधनों का इस प्रकार सफल प्रबंधन किया जाता है जिससे मानव की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, साथ ही पर्यावरण में सुधार हो या गिरावट न आए और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा हो सके।
35. टिकाऊ खेती ऐसी कृषि क्रियाओं, तकनीकों व विधियों का समावेश है जो कृषि की दक्षता, पर्यावरण संरक्षण एवं मानवीय आवश्यकता के साथ दीर्घ काल तक सामंजस्य बनाए रखती हैं।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. ऑर्गेनिक फार्मिंग शब्द का प्रयोग प्रथम बार किसने किया?
   (अ)हावर्ड ने (ब) फार्सन ने
   (स)नार्थबोर्न ने (द) वेलफोर ने
2. जैविक खेती में उपयोग लिया जाता है।
   (अ)जीवांश खाद (ब) रासायनिक उर्वरक
   (स) शाकनाशी (द) कीटनाशी
3. गोबर की खाद में कितने प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है–
   (अ) 0.5 (ब) 0.75
   (स) 0.25 (द) 1.0
4. हरी खाद के लिये ढेंचे की प्रति हेक्टेयर बीज दर रखते हैं–
   (अ) 60–80 किग्रा. (ब) 40–50 किग्रा.
   (स) 90–100 किग्रा. (द) 100–120 किग्रा.
5. जीवांश खाद से मृदा की कौनसी अवस्था पर प्रभाव पड़ता है?
   (अ) जैविक (ब) रासायनिक
   (स) भौतिक (द) उपरोक्त सभी
6. भारत में कितने प्रतिशत मृदाओं में जस्ते की कमी है?
   (अ) 47 (ब) 12
   (स) 64 (द) 58
7. चने के बीजों को कौनसे जैव उर्वरक से उपचारित करते है।
   (अ) राइजोबियम (ब) एजोटोबेक्टर
   (स) एजोला (द) एजोस्पिरिलम
8. एजोला का उपयोग कौनसी फसल में करते है।
   (अ) गेहूँ (ब) जौ
   (स) मक्का (द) धान
9. बॉयोडायनेमिक खेती की विचारधारा का प्रतिपादन किया–
   (अ) रोडेल फेमिली (ब) डॉ. रूडोल्फ स्टेनर
   (स) हंस मूलर (द) लेडी एवं वेलफोर
10. चन्द्र दक्षिणायन अवस्था में कौन सी फसलों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
    (अ) फूल (ब) चारा
    (स) अनाज (द) कन्द
11. जैविक नियन्त्रण हेतु परभक्षी कीट है।
    (अ) क्राइसोपिड्स (ब) ट्राइकोग्रामा
    (स) ट्राइकोडर्मा (द) एन.पी.वी
12. एपीकार्निया का उपयोग कौन सी फसल में किया जाता है?
    (अ) गेहूँ (ब) मक्का
    (स) धान (द) गन्ना
13. प्रथम विश्व पर्यावरण सम्मेलन कहाँ आयोजित किया गया?
    (अ) नई दिल्ली (ब) रियो–डी–जेनेरियो
    (स) स्टॉकहोम (द) वाशिंगटन
14. निम्नलिखित में से कौनसा मानक टिकाऊ खेती के निर्धारण के लिए महत्त्वपूर्ण है?
    (अ) पर्यावरण (ब) सूचना प्रबंधन
    (स) आनुवांशिक विविधता (द) ऊर्जा प्रबंधन

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

15. जैविक खेती की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
16. जैविक खेती के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
17. जैविक खेती के महत्त्व के बारे में संक्षेप में लिखिये।
18. गोबर की खाद के मुख्य घटक क्या हैं?
19. नेडेप विधि द्वारा तैयार वर्मीकम्पोस्ट में नाइट्रोजन व फॉस्फोरस की मात्रा लिखिए।
20. वर्मीकम्पोस्ट किस प्रजाति के केंचुएँ द्वारा तैयार की जाती है?
21. जीवांश खाद भूमि की संरचना में कैसे सुधार करती है?
22. खाद की परिभाषा लिखिए।
23. मक्का के लिये कौनसा नाइट्रोजनधारी जैव उर्वरक काम में लेते हैं?
24. धान के खेत में एजोला की कितनी मात्रा प्रयोग करते है?
25. कृषि पंचांग किस पर आधारित है?
26. पूर्णिमा के 48 घण्टे पूर्व बुआई करने पर क्या होता है?
27. बैसिलस थूरिन्जेन्सिस जीवाणु कौनसे गण कीटों का नियन्त्रण करते है?
28. किन्हीं दो परभक्षी कीटों के नाम लिखिए।
29. कीट व्याधि नियन्त्रण हेतु दो महत्वपूर्ण वनस्पतियों के नाम लिखिये।
30. टिकाऊपन के निर्धारण मानकों के नाम लिखिए।
31. टिकाऊ कृषि के घटकों के नाम लिखिए।
32. टिकाऊपन उत्पादकता का सूत्र लिखिए।

### लघूत्तरात्मक प्रश्न

33. आधुनिक जैविक खेती की उत्पत्ति कहाँ से हुई?
34. राजस्थान में जैविक उत्पाद को प्रमाणीकरण करने के लिए अधिकृत संस्था का नाम लिखिए।

35. हरी खाद को खेत में पलटने की विधि लिखिये।
36. गोबर की खाद बनाने की संशोधित गड्ढा विधि का उल्लेख कीजिए।
37. वर्मीकम्पोस्ट के लाभ लिखिये।
38. जीवांश खाद के उपयोग से मृदा की रासायनिक अवस्था पर होने वाले प्रभाव पर प्रकाश डालिए।
39. जीवांश खाद मृदा की जैविक अवस्था में कैसे सुधार करती है?
40. जीवांश खाद पर टिप्पणी लिखिए।
41. जैव उर्वरको के लाभ बताइये।
42. माइकोराइजा क्या है?
43. एजोला की उपयोग विधि लिखिए।
44. बॉयोडायनेमिक खेती क्या है?
45. चन्द्र उत्तरायण पक्ष में कौनसे कृषि कार्य करने चाहिए?
46. टिकाऊपन किसे कहते हैं?
47. टिकाऊ कृषि की परिभाषा लिखिए।
48. टिकाऊ कृषि में पर्यावरण के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
49. जैविक नियन्त्रण के महत्व पर प्रकाश डालिए।
50. ट्राइकोडर्मा के उपयोग पर विवरण लिखिए।
51. कीट नियन्त्रण में ट्राइकोग्रामा के उपयोग का संक्षिप्त विवरण लिखिए।

## निबन्धात्मक प्रश्न

52. भारत में जैविक खेती के भविष्य के बारे में विस्तारपूर्वक टिप्पणी लिखिये।
53. जैविक खेती का वर्णन निम्न बिंदुओं के आधार पर कीजिये–
    (अ) जैविक खेती के उद्देश्य
    (ब) जैविक खेती की अवधारणा
    (स) भारत मेंजैविक खेती का भविष्य
54. वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि का वर्णन कीजिये।
55. नेडेप विधि से कम्पोस्ट कैसे बनाया जाता है। सविस्तार वर्णन करें।
56. गोबर की खाद बनाने की ट्रेन्च विधि पर विस्तार से प्रकाश डालें।
57. हरी खाद प्रयोग की तकनीकी का वर्णन करें।
58. जीवांश खाद का मृदा पर प्रभाव निम्न बिंदुओं के आधार पर कीजिये–
    (अ) जैविक अवस्था
    (ब) रासायनिक अवस्था
    (स) भौतिक अवस्था
59. विभिन्न जैव उर्वरकों के प्रकार एवं उनकी प्रयोग विधि पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिये।
60. कृषि पंचांग के महत्व पर प्रकाश डालिये तथा चन्द्रमा की विभिन्न अवस्थाओं का कृषि कार्य में महत्व के बारें में लिखिये।
61. फसलों में कीट व्याधि नियन्त्रण के जैविक उपायों की व्याख्या कीजिये।
62. वानस्पतिक उत्पादों द्वारा फसलों के कीट–व्याधि नियन्त्रण पर प्रकाश डालिये।
63. टिकाऊ खेती के सिद्धान्तों का विवरण लिखिये।
64. टिकाऊ खेती के घटकों पर प्रकाश डालिये।

### उत्तरमाला :

1. (स), 2. (अ), 3. (अ), 4. (अ), 5. (द), 6. (अ), 7. (अ), 8. (द), 9. (ब), 10. (द), 11. (अ), 12. (द) 13. (स), 14. (अ)